श्रीः ।

नाडीज्ञानतरंगिणी

और

अनुपानतरंगिणी.

यह पुस्तक पंडित रघुनाथप्रसाद सीताराम
सुकुल काशिस्थने बनाके छपवाया था
सो हक सहित इनके पाससे लेकर

हरिप्रसाद भगीरथ गौडब्राह्मणने

मुंबईमें

"गुजराती" छापखानेमें छपवाया.

संवत् १९८०.

Printed by Manilal Itcharam Desai at
THE GUJARATI PRINTING PRESS
SASSOON BUILDINGS, CIRCLE, FORT, BOMBAY.
Published by Brijaballabh Hariprasad, Kalbadevi Road,
Ramvadi-Bombay.

अनुक्रमणिका.

अनुपानतरंगिण्यनुक्रमणिका.

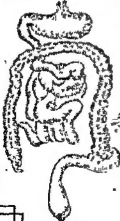
वैद्यकग्रंथाः ।










आंत (आंतड़ें)
प्रदर्शक चित्र


यमलगर्भका चित्र

अनेक गर्भका चित्र

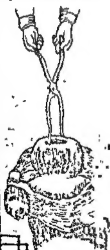




भ्रूणगर्भस्थितिप्रदर्शकचित्र



मूढगर्भ निकालने का





स्नायुप्रदर्शक चित्र

अथ

नाडीज्ञानतरंगिणी

भाषानुवादसमलंकृता ।



नत्वा श्रीराघवं देवं भूमिजारमणं हरिम्॥ रचयाम्ययि लोलाक्षि नाडीज्ञानतरंगिणीम् ॥ १॥ ज्ञात्वा कालं वलं वाले नृणामाधुनिकं वयः ॥ पराशरादिकर्षीणां वाक्यैः सिद्धांतिनामपि ॥ २ ॥ नीरतीरादिरूपैश्च स्वर्णरत्नादिकैर्यथा ॥ किरीटं भूमिपालानां महर्घैः सुषमाप्रदम् ॥ ३ ॥

टीका–अथ शकुनज्ञानतरंगिणीरचनानंतर, नाडीज्ञानतरंगिणी रचता हूं.तहां प्रथम निर्विघ्नसमाप्त्यर्थ स्व इष्टदेव राघवजीको नमस्कार करके मंगलाचरण करता हूं. अथ श्लोकार्थ–हे लोलाक्षि, प्रथम भूमिपुत्री जो श्रीजानकीजी तिनके पति श्रीरघुकुलोत्पन्न रामचंद्र साक्षात् हरि भगवान्को नमस्कार करके और उनकी कृपासे इस समयका काल,मनुष्योंकी अवस्था और बलको जानके फिर पराशरादि जो सिद्धांतोंको करनेवाले ऋषि तिनके जो वाक्य वही जल और

किनारेरूप हैं, उनकरके यह नाडीज्ञानतरंगिणी मैं रचता हूं. जैसें अमूल्य स्वर्णरत्नादिकरके राजाओंको परम शोभा देनेवाला, मुकुट रचते हैं, तैसे ॥१॥२॥३॥

चापल्यं मे क्षमिष्यंति विद्वांसो गतमत्सराः ॥ मूर्खाणां मत्सरवतां विरोधैः का क्षतिर्मम ॥ ४ ॥

टीका—हे प्रिये, जो विद्वान् और ईर्षारहित हैं वे मेरी चपलताको क्षमा करें और जो मूर्ख हैं और ईर्षाकरनेवाले हैं उनके विरोधसे मेरी क्या हानि है अर्थात् कुछभी हानि नहीं है ॥ ४ ॥

लोलाक्षी पृच्छति ।

वद भिषग्वर कंजविलोचन
पवनपित्तकफैर्धमनीगतिम् ॥
तव मुखाब्जवचोऽमृतपानतो
भवति मे मनसि प्रवरं सुखम् ॥ ५ ॥

टीका—लोलाक्षी पूछती है. हे वैद्यश्रेष्ठ, हे कमलनयन, वातपित्तकफकरके जो जो नाडीकी गति होती है सो सो कहो. तुम्हारे मुखरूप चंद्रमासे वचनरूप अमृतपान करनेसे मेरे मनमें परप सुख होता है ॥५॥

केचिद्वातं वदंत्यादौ केचित्पित्तं भिष-

ग्वराः ॥ निश्चितं ब्रूहि कश्चादौ को मध्येऽन्ते च कः पृथक् ॥ ६ ॥

टीका—कितने विद्वान् वैद्य आदिमें वात कहते हैं, कितने पित्त कहते हैं, तहां आप निश्चय करके कहो कि, कौन दोष आदिमें और कौन मध्यमें और कौन अंतमें है सो पृथक् कहो ॥ ६ ॥

के देवाः संति नाडीनां कथं तांश्च परीक्षयेत् ॥ अनापृष्टं च यत्किंचित्तदपि प्रवद प्रिय ॥ ७ ॥

टीका—हे प्रिय, वात, पित्त कफ इनकी नाडियोंके देवता कौन हैं. और नाडीकी परीक्षा कैसे करना? औरभी जो मैंने न पूछा हो सोभी कहो॥७॥

रघुनाथप्रसादः ।

अयि शृणु कुंजरगामिनि कांते ऋषिवचनानि वदाम्यहमद्धा ॥ घनकुचयुग्मवरे विधुवक्त्रे ॥ मति मति बुद्धिमदात्मभवा त्वम् ॥८॥

टीका—अयि कुंजरगामिनि, हे कांते, तुम सुनो; मैं साक्षात् ऋषियोंके वचन कहूंगा. हे घनकुचयुग्मवरे, हे चंद्रवदने, हे बुद्धिमति, तुम बुद्धिमानकी पुत्री हो, इसवास्ते प्रीतियुक्त सुनो ॥ ८ ॥

श्रीश्रीनिवासतातार्यः सुप्रसन्नो मयि स्थितः ॥ रघुनाथप्रसादोऽपि कवित्वेऽतोऽश्रमं क्षमः ॥ ९ ॥

टीका—श्रीश्रीनिवास ताताचार्य, अतिप्रसन्न मे हृदयमें स्थित हैं; इसवास्ते मैं कवितामें विना श्र समर्थ हूं. यहां केवल गुरुकृपामात्र समर्थता कारण है, यह निश्चय जानो ॥ ९ ॥

वातिकायाः पतिर्ब्रह्मा पैत्तिकाया-स्त्रिशूलधृक् ॥ श्लैष्मिकायाः पति-र्विष्णुर्वदंतीति विपश्चितः ॥ १० ॥

टीका—वायुकी नाडीका देवता ब्रह्मा है, पि की नाडीका शिव देवता है, कफकी नाडी विष्णु देवता है ॥ १० ॥

अन्यच–

वातिकायाः पतिर्वायुः पैत्तिकाया दिवाकरः ॥ श्लैष्मिकायाः पतिश्चंद्रो वदंतीति मुनीश्वराः ॥ ११ ॥

टीका—और भी मुनीश्वर कहते हैं. वायु नाडीका वायु देवता है, पित्तकी नाडीका सूर्य कफकी नाडीका चंद्र देवता है ॥ ११ ॥

अथ नाडीज्ञानयोग्यवैद्यः ॥ स्थिरचित्तो निरोगश्च सुखासीनः प्रसन्नधीः ॥ नाडीज्ञानसमर्थः स्यादित्याहुः परमर्षयः॥१२॥

टीका–स्थिरचित्त, निरोग, सुखसे बैठा हुआ, प्रसन्नबुद्धि ऐसा वैद्य नाडीज्ञानमें समर्थ होता है. ऐसे श्रेष्ठ ऋषि कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ नाडीज्ञानायोग्यवैद्यः ॥ पीतमद्यश्चंचलात्मा मलमूत्रादिवेगयुक् ॥ नाडी ज्ञानेऽसमर्थः स्याल्लोभाक्रांतश्चकामुकः १३

टीका–अथ नाडीज्ञानमें असमर्थ वैद्य कहते हैं. जिसने मदिरा पिया हो और जिसका मन चंचल हो और जिसको मलमूत्रादि त्यागनेकी इच्छा होरही है और जिसको लोभ अत्यंत हो और कामकरके पीडित हो सो वैद्य नाडीज्ञानमें असमर्थ है ॥१३॥

अथ नाडीं द्रष्टुं योग्यो रोगी॥त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः॥अंतर्जानुकरस्यापि नाडीं सम्यक्परीक्षयेत् ॥१४॥

टीका–जो मल और मूत्र त्यागके सुखसे बैठा हो और दोनों जानुओंके बीचमें हाथ किये हो उस रोगीकी नाडी अच्छी तरहसे परखनी ॥ १४ ॥

अथ नाडीं द्रष्टुमयोग्यः ॥ सद्यः स्नात
भुक्तस्य तथा तैलावगाहिनः॥ क्षुत्तृषार्त
सुप्तस्य नाडी सम्यङ्न बुद्ध्यते ॥१

टीका–जो तत्काल स्नान किया हो वा भो
किया हो अथवा तेल मर्दन कराया हो अ
भूखा पियासा हो अथवा सोता हो उसकी न
अच्छीतरहसे देखनेमें नहीं आती है ॥ १५

अथ स्त्रीपुंसोर्नाडीज्ञानभेदमाह ॥
योषितो वामभागस्य दक्षिणस्य
च नुर्भिषक् ॥ पश्येत्स्वानुभवान्ना-
डीमभ्यासेनापि रत्नवत् ॥१६॥

टीका–अब स्त्रीपुरुषोंकी नाडीका भेद कह
स्त्रीके वाम अंगमें और पुरुषके दक्षिण अंगमें
साक्षात् अपने अनुभवकरके और अभ्यास
जाने, जैसे जौहरी रत्नकी परीक्षा स्वानुभव
अभ्यासकरके करता है ॥ १६ ॥

अस्य भेदस्य कारणं तंत्रांतरे चोक्त
कूर्मो वै देहिनामस्ति नाभिस्थाने
स्थितः ॥ स्त्रीणामूर्ध्वमुखः पुंसामधोव
प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥ तस्यैव दक्षिणे

नाडी ज्ञेया भिषग्वरैः॥ अनेन कारणेनैव नारीपुंसोर्व्यतिक्रमः ॥ १८ ॥

टीका–जो कहा कि, पुरुषके दाहिने और स्त्रीके वामे अंगमें नाडीका निश्चय करना चाहिये; सो इसका कारण यही है कि, देहधारीमात्रके नाभिस्थानमें कूर्म सदा रहता है, सो स्त्रीके ऊर्ध्वमुख रहता है और पुरुषके अधोमुख रहता है, उसी कूर्मके दाहिने भागमें वैद्योंकरके नाडी जानने योग्य है; इसवास्ते स्त्रीसे पुरुषके व्यतिक्रम है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ नाडीस्पर्शनविधिः ॥वारत्रयं परीक्षेत धृत्वा धृत्वा विमुच्य च ॥ विमर्श्य बहुधा बुद्ध्या ततो रोगं विनिर्दिशेत् ॥१९॥

टीका–वैद्य रोगीकी नाडीपर तीन वार अंगुली धर धर और उठा उठाके अच्छी तरहसे बुद्धिमें विचारले फिर रोग कहै ॥ १९ ॥

अन्यच्च ॥ ईषद्विनामितमये विततांगुलिं च वाले निगृह्य करमामयिनो जनस्य ॥ पुंसोऽपसव्यमपि सव्यकरेण पश्यन्नाड्यां च शश्वदपसव्यकरांगुलीभिः॥२०॥ पित्तं समीरणमथो हि कफं क्रमेण ह्यं...

लत इति प्रवदंति वैद्याः ॥ नार्यास्तु वाममपसव्यकरेण धीरः संगृह्य सव्यकरकांगुलिभिस्तथैव ॥ २१ ॥

टीका—अब नाडीस्पर्श करनेकी विधि कहते हैं. रोगी पुरुषके दाहिने हाथको सीधी अंगुली करके और किंचित् नवाके अपने वामे हाथके पकडके नाडीके विषे अंगुष्ठकी मूलसे लेके अपने दाहिने हाथकी तीन अंगुली रखकरके क्रमसे तर्जनीके नीचे पित्त, मध्यमाके नीचे वायु, अनामिकाके नीचे कफको देखना ऐसे वैद्य कहते हैं. और स्त्रीका वाम हस्त अपने दाहिने हाथसे पकड़के उसी क्रमसे अपने वामे हाथकी अंगुलियोंसे देखना चाहिये॥२०॥२१॥

उक्तं च पराशरसनत्कुमाराभ्याम् ॥ वाताधिका वहेन्मध्ये त्वग्रे वहति पित्तला ॥ अंते श्लेष्मवती ज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत् ॥ २२ ॥

टीका—वाताधिक नाडी मध्यमें चलती है, पित्ताधिक आदिमें वहती है, कफाधिक अंतमें वहती है और मिश्रित होनेसे मिश्रित चलती है ॥ २२ ॥

अत्र दृष्टांतः॥तृणं पुरःसरं कृत्वा यथा वातो वहेद्दली॥स्वानुगं च तृणं गृह्य पृथिव्या

वक्रगो यथा ॥ २३ ॥ एवं मध्यगतो वायुः कृत्वा पित्तं पुरःसरम् ॥ स्वानुगं कफमादाय नाड्यां वहति सर्वदा ॥ २४ ॥ अतएव च पित्तस्य ज्ञायते चपला गतिः ॥ वक्रा प्रभंजनस्यापि वैद्यैर्मन्दा कफस्यच ॥ २५ ॥ वाताग्रेऽस्ति गतिः शीघ्रा तृणस्येति विदृश्यताम् ॥ मंदानुगस्य वक्रा वै मरुतो मध्यगस्य ह ॥ २६ ॥ तथाऽत्रैव च ज्ञातव्या गतिर्दोषत्रिकोद्भवा ॥ नान्यथा ज्ञायते स्नायुर्गतिरेतद्विनिश्चितम् ॥ २७ ॥

टीका—यहां दृष्टांत देते हैं. जैसे पृथ्वीमें जब अति प्रबल पवन चलता है तब देखनेमें आता है कि, तृणको अगाड़ी भी बड़े वेगसे उड़ाता जाता है. और पिछाड़ीको भी तृण खींचता जाता है, और आप बीचमें वक्रगतिसे चलता है ॥ २३ ॥ ऐसे नाडीमें सर्वदा आप मध्यमें वक्रगतिसे रहके पित्तको अगाड़ी करके कफको पिछाड़ी लिये चलता है ॥ २४ ॥ इसीवास्ते पित्तकी चपलगति वैद्योंकरके जाननेमें आती है. और वायुकी वक्रगति कफकी मंदगति जानी जाती है ॥ २५ ॥ देखो प्रसिद्ध है कि, जब

जोरसे हवा चलती है, जिसको लोग आंधी कहते हैं, उसके अगाड़ी जो तृण उड़ता है सो बड़े वेगसे चलता है. और जो पीछे आड़ता है सो मंदगतिसे चलता है, बीचमें वायु आड़ा टेढ़ा घूमता चलता है ॥ २६ ॥ तैसेही यहां भी नाडीमें वात पित्त कफकी गति जाननी चाहिये; और तरहसे नाडीकी गतिका बराबर निश्चय नहीं होता है ॥ २७ ॥

तदिदं कारणम् ॥ पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः ॥ वायुना यत्र नीयंते तत्र वर्षंति मेघवत् ॥ २८ ॥

टीका–तिसका यह कारण है कि, पित्त और कफ पंगुले हैं औरभी मलधातु पंगुले हैं; जहां वायु ले जाता है वहां मेघकी नाईं वर्षते हैं. ऐसे यहांभी वायुके आधीन पित्तादिक हैं २८ ॥

अथ स्वस्थस्य नाडीलक्षणम् ॥ भूनागसदृशी प्रायः स्वच्छा स्वस्थस्य वै शिरा ॥ सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ २९ ॥

टीका–स्वस्थ सुखीकी नाडी केचुवा जंतुसरीखी बहुधा चलती है और स्वच्छ, स्थिर बलसंयुक्त होती है ॥ २९ ॥

प्रातःस्निग्धा शिरा ज्ञेया मध्याह्नेऽप्युष्णतान्विता ॥ सायाह्ने धावमाना च सदा रोगविवर्जिता ॥ ३० ॥

टीका–रोगरहित नाडी प्रातःकालमें स्निग्ध यानी स्थिर सचिक्कन सदा रहती है, मध्यान्हमें उष्णतायुक्त, सायंकालमें शीघ्रगति होती है ॥ ३० ॥

अथ नाड्या गतिरुच्यते ॥ वाताद्वक्रगतिर्नाडी पित्ताच्चपलगा भवेत् ॥ कफान्मंदगतिश्चैषा मिश्रिते मिश्रगा तथा ॥३१॥

टीका–वातसे नाडी वक्रगति होती है, पित्तसे चंचल होती है, कफसे मंदगति होती है, मिश्रितसे मिश्रित होती है, ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ॥ सर्पजलौकादिगतिं वदंति हि बुधाःप्रभंजनेन नाडीम् ॥ पित्ते च काकलावकभेकादिगतिं तथा चपलाम् ॥३२॥

टीका–वातरोगमें सर्प और जलौकादिककी गति चलती है-पित्तरोगमें काक, लाव, मेढ्डक इत्यादि गति और चपल चलती है-ऐसे ज्ञानी कहते हैं ॥३२॥

राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः ॥ कुक्कुटादिगतिं धत्ते धमनी कफसंगता ३३

टीका–राजहंस, मोर, कबूतर पडूखी और कुक्कुट (मुरग) इनकी गतिसे कफकी नाडी चलती है ॥३३॥

सर्पादिगतिकां नाडीं काकादिगतिकां तथा ॥ वातपित्तामयोर्मिश्रां प्रवदंति भिषग्वराः ॥ ३४ ॥

टीका–जो नाडी कहीं सर्पादिकगति और कहीं काकादिकगति मिश्रित चलैं तिसको वैद्यश्रेष्ठ वातपित्तमिश्रित रोगकी कहते हैं ॥ ३४ ॥

दंदशूकगतिं नाडीं कदाचिद्धंसगामिनीम् ॥ कफवातामयोर्न्मिश्रां प्रवदंति भिषग्वराः ॥ ३५ ॥

टीका–जो नाडी कदाचित् सर्पगति और कदाचित् हंसगतिसे चलति है उसको श्रेष्ठ वैद्य कफवातमिश्रित रोगकी कहते हैं ॥ ३५ ॥

मंडूकादिगतिं नाडीं कदाचिद्धंसगामिनीम् ॥ कफपित्तामयोर्न्मिश्रां प्रवदंति भिषग्वराः ॥ ३६ ॥

टीका–जो नाडी कदाचित् मेडुककी गति और कदाचित् हंसकी गतिसे चलति है उसको श्रेष्ठवैद्य [illegible] नाडी कहते हैं ॥ ३६ ॥

अन्येऽप्याहुः ॥ क्षणे वक्रा क्षणे तीव्रा मध्यमातर्जनीतले ॥ स्फुटा भवति सा नाडी वातपित्तगदोद्भवा ॥ ३७ ॥

टीका–जो नाड़ी क्षणमें वक्र और क्षणमें तीव्र गतिसे तर्जनी और मध्यमाके नीचे प्रकट होती है सो वातपित्तरोगकी है ॥ ३७ ॥

स्फुटा वक्रा च मंदा च मध्यमानामिकातले ॥ या भवेत्सा हि विज्ञेया कफवातसमुद्भवा ॥ ३८ ॥

टीका–जो नाड़ी क्षणक्षणमें वक्र और मंदगतिसे मध्यमा और अनामिकाके नीचे प्रकट होती है सो वातकफकी है ॥ ३८ ॥

क्षणे मंदा क्षणे तीव्राऽनामिकातर्जनीतले ॥ स्फुटा स्यात्साधरा ज्ञेया कफपित्तसमुद्भवा ॥ ३९ ॥

टीका–जो नाड़ी क्षणमें तीव्र और क्षणमें मंदगतिसे अनामिका और तर्जनीके नीचे प्रकट होती है सो कफपित्तकी है ॥ ३९ ॥

अन्ये [illegible] स्फुटमाहुः
तस्या [illegible] तीव्रा [illegible]

द्भवा ॥ मंदा वातकफोन्मिश्रा मध्यमाधो हि नाडिका ॥ ४० ॥

टीका–जो नाड़ी मध्यमा अंगुलीके नीचे जो वातस्थान है तहां तीव्र चलै तो वातपित्तकी और मंद चलै तो वातकफकी जानना ॥ ४० ॥

पित्तस्थाने च या वक्रा पित्तवातोद्भवा च सा ॥ मंदा पित्तकफातंकसंभवा तर्जनीतले ॥ ४१ ॥

टीका–जो नाड़ी तर्जनीके नीचे पित्तस्थानमें वक्र चलै तो पित्तवात और मंद चलै तो पित्तकफसंभव है यह जानना ॥ ४१ ॥

कफस्थाने च या तीव्रा कफपित्तगदोद्भवा ॥ वक्रा श्लेष्ममरुन्मिश्राऽतके सानामिकातले ॥ ४२ ॥

टीका–जो नाड़ी अनामिकाके नीचे कफस्थानमें तीव्र चलती हो सो कफपित्तकी और वक्र हो सो कफवातकी जानना ॥ ४२ ॥

अथ ज्वरकामादिनाड़ीलक्षणम् ॥ ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत्॥कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥

४३॥ मंदाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ॥ असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी॥४४॥लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता॥ सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती स्मृता ॥ ४५ ॥

टीका—अथ ज्वर और कामादिकके नाड़ीलक्षण कहते हैं. ज्वरके कोपसे नाड़ी उष्णता और वेगयुक्त होती है. काम और क्रोधसे वेगयुक्त होती है. चिंता और भयकी नाड़ी क्षीण होती है ॥४३॥ जिसका जठराग्नि मंद और धातु क्षीण होती है उसकी नाड़ी अतिमंद चलती है. जिसके रक्तविकार है उसकी नाड़ी पत्थरसी भारी और किंचित् गरम चलती है. और आमरोगयुक्त नाड़ी भारी लदे भैंसेकी चालपर होती है ॥ ४४ ॥ जिसका जठराग्नि प्रदीप्त है उसकी नाड़ी हलकी और वेगयुक्त चलती है और सुखकी नाड़ी स्थिर और बलयुक्त होती है ॥ ४५ ॥

अथ सन्निपातनाडीलक्षणम् ॥ लावतित्तिरवर्तीकगमना सन्निपाततः॥अंगुलीत्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सा धरा ध्रुवम् ॥४६॥

टीका—जो नाड़ी लावपक्षी तित्तिर और वटेरकी

गतिसे चलति है सो सन्निपातकी तीनों अंगुलियोंके नीचे प्रसिद्ध होती है ॥ ४६ ॥

अन्यच्च ॥ काष्ठकुट्टो यथा काष्ठं कुट्टते चातिवेगतः ॥ स्थित्वा स्थित्वा तथा नाडी सन्निपाते भवेद्ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

टीका–जैसे कठफोरा पक्षी अतिवेगसे काष्ठको रहरहके फोरता है तैसे सन्निपातमें नाडी होती है ॥४७

अथ साध्यासाध्यविचारः ॥ स्पंदते चैकमानेन त्रिंशद्वारं यदा धरा ॥ स्वस्थानेन तदा नूनं रोगी जीवति नान्यथा ॥ ४८ ॥

टीका–जो नाड़ी एकलाग निरंतर अपने स्थानपर तीसवेर फरके तौ रोगी जीवै, नहीं तौ नहीं ४८

अथासाध्यनाड़ीलक्षणम् ॥ स्थिरा नाड़ी भवेद्यस्य विद्युद्द्युतिरिवेक्षते ॥ दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये मृत्युरेव च ॥४९॥

टीका–जिसकी नाडी स्थिर हो और बिजुलीसरीखी रहरहके चलै तिसकी आयु एक दिनकी है, दूसरे दिन मृत्यु है ॥ ४९ ॥

अतिसूक्ष्मातिवेगा वा शीतला च भवेद्यदि ॥ तदा वैद्यो विजानीयादयं रोगी विनश्यति ॥ ५० ॥

टीका—जिसकी नाड़ी अतिसूक्ष्म अथवा अतिवेगसे चलती है उसको वैद्य ऐसा जाने कि, यह रोगी मरेगा ॥ ५० ॥

तिर्यगुष्णा च या नाडी सर्पवद्वेगवत्तरा ॥ कफपूरितकंठस्य जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥ ५१ ॥

टीका—जिसकी नाड़ी वक्र और सर्पसरीखी अतिवेगसे चलती हो और कंठ कफकरके भरा हो तिस रोगीका जीवना दुर्लभ है ॥ ५१ ॥

दृश्यते चरणे नाडी करे नैव विदृश्यते ॥ मुखं विकसितं यस्य जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥ ५२ ॥

टीका—जिसके पगकी नाडी चलती हो और हाथकी न चलती हो और मुख फैली रहा हो तिस रोगीका दुर्लभ जीवना है ॥ ५२ ॥

कंपते स्पंदतेऽत्यंतं पुनः स्पृशति चांगुलीः ॥ तामसाध्यां विजानीयान्नाडीं दूरेण वर्जयेत् ॥ ५३ ॥

टीका—जिसकी नाड़ी कंपयुक्त चलती चलती रहजाय और फिर अंगुलियोंको स्पर्श करै तिसकी

नाड़ी असाध्य जानके दूरहीसे त्याग दे ॥ ५३

शीघ्रा नाड़ीमलोपेता शीतला वा
दृश्यते ॥ द्वितीये दिवसे मृत्युस्तस्य
न्तुर्भवति ध्रुवम् ॥ ५४ ॥

टीका–जिसकी नाड़ी शीघ्र और मलयुक्त चल
हो वा शीतल अर्थात् ठंढी चलती हो तिसकी
दूसरे दिन जरूर होती है ॥ ५४ ॥

मुखे नाड़ी वहेत्तीव्रा कदाचिच्छीत
ला वहेत् ॥ आयाति पिच्छिलः स्वेद
सप्तरात्रं स जीवति ॥ ५५ ॥

टीका–जिसकी नाड़ी अग्रभागमें अतिशीघ्र
लती हो और कदाचित् ठंढी हो और देहमें चिक
पसीना आता हो तो रोगी सात दिन जीवे ॥ ५५

मुखे नाड़ी यदा नास्ति मध्ये शैत्यं
बहिः क्लमः ॥ यदा मंदा वहेन्नाडी
स त्रिरात्रं न जीवति ॥ ५६ ॥

टीका–जिसकी पित्तनाड़ी नष्ट होगई हो औ
मध्यमें वातनाड़ी शीतल होगई हो और बा
ग्लानि हो और नाड़ी मंद चलती हो सो ती
रात्रि न जीवेगा ॥ ५६ ॥

शीघ्रा नाड़ी

समो ज्वरः ॥ दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीयेऽह्नि म्रियेत सः ॥ ५७ ॥

टीक-जिसकी नाड़ी मलयुक्त हो और मध्याह्नमें अग्नितुल्य ज्वर हो सो एक दिन जीवै ॥५७॥

हिमवच्छीतला नाड़ी ज्वरदाहेन तापिनः ॥ त्रिदोषलग्विभजतो मृत्युरेव दिनत्रयात् ॥ ५८ ॥

टीका-जिसकी नाड़ी हिमसरीखी ठंढी हो और जो ज्वरके दाहकरके तपायमान हो और त्रिदोषरोगको प्राप्त भयी हो तिसकी मृत्यु तीन दिनमें है ॥५८॥

स्वथानविच्युता नाड़ी यदा वहति वा न वा ॥ ज्वाला च हृदये तीव्रा तदा ज्वालावधिस्थितिः ॥ ५९ ॥

टीका-जिसकी नाड़ी स्थान छोड़के कभी चले कभी न चले और हृदयमें तीव्र ज्वाला हो तो जहांतक ज्वाला है तहांतक जीता है ॥ ५९ ॥

अंगुष्ठमूलतो बाह्यौ द्व्यंगुले यदि नाडिका ॥ प्रहरार्धाद्बहिर्मृत्युं जानीयाच्च विचक्षणः ॥ ६० ॥

टीका–अंगुष्ठके मूलसे दो अंगुल छोड़के जो नाड़ी हो तो आधे पहर पीछे मरै ॥ ६० ॥

मध्ये रेखासमा नाड़ी यदि तिष्ठति निश्चला ॥ षड्भिश्च प्रहरैस्तस्य मृत्युर्ज्ञेयो विचक्षणैः ॥ ६१ ॥

टीका–जिसकी नाड़ी वातस्थानमें जो रेखा सरीखी निश्चल चलती हो तिसकी छःप्रहरमें मृत्यु है।६१।

मंदं मंदं शिथिलशिथिलं व्याकुलंव्याकुलं वा स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति सूक्ष्मा नराणाम् ॥ नित्यं स्थानात्स्खलति पुनरप्यंगुलीः संस्पृशेद्वा भावैरेवं बहुविधतरैः सन्निपाते त्वसाध्या ॥ ६२ ॥

टीका–जिन मनुष्योंकी नाड़ी मंद और शिथिल शिथिल और व्याकुल चलती हो और रह रहके अतिसूक्ष्म और निरंतर स्थानको छोड़के फिरभी अंगुलीयोंको स्पर्श करै ऐसे अनेक लक्षणयुक्त सन्निपातकी नाड़ी असाध्य है ॥ ६२ ॥

अथ चैतादृशलक्षणापि अनया गत्या साध्या ॥ पूर्वं पित्तगतिं प्रभंजनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रतीं स्वस्थानाद्भ्रमणं

मुहुर्विदधतीं चक्रादिरूढामिव ॥ तीव्रत्वं दधतीं कदाचिदपि वा सूक्ष्मत्वमातन्वतीं नाऽसाध्यां धमनीं वदंति सुधियो नाड़ीगतिज्ञानिनः ॥ ६३ ॥

टीका—अब ऐसे लक्षणयुक्त नाड़ी भी इस रीतिसे साध्य है. सो कहते हैं. जो नाड़ी स्पर्शसमयमें प्रथम पित्तगति, फिर वातगति फिर कफगति चले और अपने स्थानसे भ्रमती हुई वारंवार जैसे चक्रपर स्थित होती है, ऐसे चले. कभी तीव्र और फिर सूक्ष्म भी चले तो इस नाड़ीको नाड़ीज्ञानवाले असाध्य नहीं कहते हैं ॥ ६३ ॥

भारप्रवाहमूर्छाभयशोकप्रमुखकारणान्नाडी ॥ संमूर्छितापि गाढं पुनरपि सा जीवितं धत्ते ॥ ६४ ॥

टीका—भार ले चलनेसे, मूर्च्छासे, भयसे, शोकसे जो नाड़ी मूर्च्छित भी होती है तो भी साध्य है॥६४॥

भूतावेशयुतस्यापि नष्टशुक्रस्य नाडिका ॥ त्रिदोषगमना चापि सूक्ष्मा चापि न मृत्युदा ॥ ६५ ॥

टीका—भूतावेशयुक्तकी और धातुक्षीणकी नाड़ी

त्रिदोषगती भी चलती है, और सूक्ष्म तो भी मृत्यु
दायक नहीं है ॥ ६५ ॥

स्वस्थानहीना शोके च हिमाक्रांते च निर्गदा ॥ भवंति निश्चला नाड्यो न किंचित्तत्र वै भयम् ॥ ६६ ॥

टीका–शोकमें और शीतलगमनमें स्थिर नाड़ी हो तोभी भय नहीं है ॥ ६६ ॥

स्तोकं वातकफं नष्टं पित्तं वहति दारुणम् ॥ पित्तस्थानं विजानीयात्तत्र भेषजमाचरेत् ॥ ६७ ॥

टीका–थोड़ा वात और कफ नष्ट भया हो और पित्त दारुण चले तो औषध करना ॥ ६७ ॥

स्वस्थानच्यवनं यावद्धमन्या नोपजायते ॥ तत्स्थचिह्नस्य सत्वेऽपि नाऽसाध्यत्वमितीरितम् ॥ ६८ ॥

टीका–जहांतक नाड़ी बिलकुल स्थानभ्रष्ट न हो और चिह्न त्रिदोषका हो तोभी असाध्य नहीं है ।६८।

अथाहारवशान्नाड्या गतिरुच्यते ॥ पुष्टिस्तैलगुडाहारे माषे च लगुडाकृतिः ॥ क्षीरे स्तिमितवेगा च मधुरे हंसगामिनी ॥६९॥

टीका-अब आहारके वशमें नाड़ी गति कहते ल और गुड़ खानेसे नाडीपुष्ट होती है और उड़द नेसे लकुटसे आकार होती है, दूध खानेसे मंदगति ती है और मिष्ट भोजनसे हंसकी गति होती है ६९

मधुरे बर्हिगा नाड़ी तिक्ते स्थूलगति-र्भवेत् ॥ अम्ले भेकगतिः कोष्णा क-टुकैर्भृङ्गसन्निभा ॥ ७० ॥

टीका-मधुर भोजनसे नाड़ी मयूरगति होती है, तिक्त भोजनसे स्थूलगति होती है, खटाईसे किंचित् ष्ण और मेडुककी गति चलती है. कड़ुयेसे भ्रमरकी गति चलती है ॥ ७० ॥

कषाये कठिना म्लाना लवणे सरलाद्रुता॥ एवं द्वित्रिचतुर्योगे नानाधर्मवती धरा७१

टीका-कषैले भोजनसे कठिन और मलिन अ-र्थात् किंचित् मंद चलती है. लवणरसभक्षणसे सरल और शीघ्रगति होती है. ऐसेही दो, तीन, चार वा सर्व मिलनेसे नानाप्रकारकी गति होती है ॥ ७१ ॥

द्रवेऽतिकठिना नाड़ी कोमला कठि-नाशने ॥ द्रवद्रव्यस्य काठिन्ये को-मला कठिनापि च ॥ ७२ ॥

टीका–द्रव अर्थात् पतला जैसे कठिन इत्यादि भक्षण करनेसे अतिकठिन नाड़ी चलती और कठिन आहारसे कोमल चलती है [illegible] लिये हो तौ कोमल और [illegible]

द्रव्यैश्च मधुराम्लाद्यैर्नाडी शीता विशेषतः ॥ चिपिटैर्भ्रष्टद्रव्यैश्च स्थिरा मंदतरा भवेत् ॥ ७३ ॥

टीका–मीठे और खट्टे मिश्रितसे नाड़ी विशेपकरके ठंढी रहती है और चूरा जिनको पौहा भी कहते हैं इनसे औसिके चर्वणसे स्थिर और मंद होती है ७३

कूष्मांडैर्मूलकैश्चैव भवेन्मंदा हि नाड़िका ॥ शाकैश्च कदलैश्चैव रक्तपूर्णेव सा भवेत् ॥ ७४ ॥

टीका–कूष्मांड और मूलीसे नाड़ी मंद होती है. शाक अरु केलेसे रक्तपूर्ण जैसी होती है ॥ ७४ ॥

मांसात्स्थिरवहा नाड़ी दुग्धाच्छीता बलीयसी ॥ गुडक्षीरैः सपिष्टैश्च स्थिरा मंदा धरा भवेत् ॥ ७५ ॥

टीका–मांस खानेसे नाड़ी स्थिर, दूधसे ठंढ और बलयुक्त, गुड, दूध और पिष्टसे स्थिर, और मंद होती है ॥ ७५ ॥

टीका–विषूचिका रोगमें नाड़ी मंडूकगति चलती है, प्रमेह और उपदंशमें ग्रंथिरूप चलती है ७९

प्रदरे रक्तपित्ते च श्वेते ग्रंथिवदच्छंति॥ क्षतकासेतथाराजयक्ष्मणिग्रंथिरूपिणी८०

टीका–श्वेतप्रदर, रक्तपित्त और क्षत, कास तथा क्षयीरोगमें ग्रंथिरूप चलती है ॥ ८० ॥

वांतस्य शल्याभिहतस्य जंतोर्वेगावरोधाकुलितस्य चैव॥ गतिं विधत्ते धमनीगजेंद्रमरालकानां च कफोल्वणस्य ८१

टीका–जिस पुरुषने वांति की हो अथवा जिसके तीर वगैरे लगा हो अथवा जो मलादिकवेगसे व्याकुल हो अथवा जिसके कफ बहुत हों उसकी नाडी हाथी और हंसकी गतिसे चलती है ॥८१॥

अथान्यमतानुसारेण स्वस्थनाडीलक्षणम्॥आयि प्रिये शृणुष्व वै वदाम्यहं मतांतरम्॥ नरस्य जन्मकालतो ह्यशीतिवत्सरावधि ॥ शिशोर्हि जन्मकालतः पलावधि प्रकंपते॥ धरा रसेषु वारकं निरंतरं शिशुप्रिये ॥ ८२ ॥

टीका–हे प्रिये, अब मैं मतांतरसे स्वस्थनाड़ीका

लक्षण कहताहूं. जन्मकालसे अस्सी वर्षपर्यंत कहता हूं जन्मकालसे एक पलपर्यंतमें नाड़ी ५६ छप्पन्न वार फड़कती है ॥ ८२ ॥

पलादारभ्य वर्षांतं पलैकेन च नाडिका ॥ नेत्रेषु कृत्वश्चलति मत्तकुंजरगामिनि ॥ ८३ ॥

टीका–जन्मकालसे पलपरमितकाल पीछे एक वर्षपर्यंत एक पलमें बावन ५२ वेर चलती है ॥८३॥

अब्दादब्दद्वयं नाड़ी पलैकेन प्रवेपते ॥ वेदाब्धिवारं लोलाक्षि चलत्कुंडलशालिनि ॥ ८४ ॥

टीका–एकवर्ष पीछे दोवर्षपर्यंत एकपलमें नाड़ी चौवालिश ४४ वेर कंपती है ॥ ८४ ॥

वर्षद्वयात्त्रिवर्षांतं पलैकेन च तंतुकी ॥खवेदकृत्वश्चलति पीनोत्तुंगपयोधरे ॥ ८५ ॥

टीका–दोवर्ष पीछे तीनवर्षतक एकपलमें चालीश ४० वेर नाड़ी चलती है ॥ ८५ ॥

त्रिवर्षात्सप्तवर्षांतं षट्त्रिंशद्वारकं प्रिये ॥ कंपते च पलैकेन जीवितज्ञा प्रियंवदे ८६ ॥

टीका–तीनवर्षकी अवस्थासे सातवर्षकी

पर्यंत नाड़ी एकपलमें छत्तीसवार ३६ फरकती है८६

सप्तमान्मनुवर्षांतं वेदाग्निवारकंधरा ॥ ततश्च त्रिंशद्वर्षांतं द्वात्रिंशद्वारमेवहि ॥८७॥

टीका—सातवर्षपीछे चौदहवर्षतक नाड़ी एकपलमें चौतीस ३४ बार चलती है और चौदहवर्ष पीछे तीसवर्षतक एक पलमें बत्तीस ३२ बार चलती है ८७

त्रिंशदब्दात्समारभ्य खशराब्दांतमेव च ॥ खाग्निवारान्विशालाक्षि जीवितज्ञा प्रकंपते ॥ ८८ ॥

टीका—तीसवर्षसे पचासवर्षतक नाड़ी एकपलमें तीश ३० बार चलती है ॥ ८८ ॥

शतार्धवर्षादारभ्याशीतिवर्षांतमेव हि ॥ चतुर्विंशतिवारान्वै कंपते धमनिः प्रिये ॥ ८९ ॥

टीका—पचास वर्षके पीछे अस्सी वर्षतक चौबीस २४ बार नाड़ी एकपलमें चलती है ॥ ८९ ॥

एवमुक्तप्रमाणाच्च भवेन्न्यूनाधिकं यदि ॥ न्यूनाधिके क्रमात्स्यातां शीतोष्णे च घटस्तनि ॥ ९० ॥

टीका—ऐसे उक्त प्रमाणसे जो न्यून चलै तो

शीतत्व और जो ज्यादा चलै तो उष्णता है ॥९०॥

अथ नाडीगतिकारणम् ॥ हृदयं चेतनास्थानं तज्ज्ञातृसुखदुःखयोः ॥ तत्संकोचविकाशाभ्यांजीवितज्ञा प्रकंपते ॥९१॥

टीका—अथ नाड़ीकी गतिका कारण कहते हैं चेतनाका स्थान हृदय है सो सुखदुःखका ज्ञाता है; तिसके संकोच और विकाशसे नाड़ी चलती है॥९१॥

वायुरंतर्बहिर्याति तत्संकोचविकाशतः ॥ तेन नाड्यां वहत्यसृक्तेन तस्या गतिर्भवेत् ॥ ९२ ॥

टीका—उसी संकोच विकाशसे वायु अंदर और बाहर चलता है, उस चलनेसे नाड़ीमें रक्त बहता है. उसी प्रवाहकरके नाड़ीकी गति जानी जाती है ९२॥

अथ नाडीज्ञाने प्रयत्नोऽवश्यमेव कर्तव्यः ॥ स यथा ॥ नाडीज्ञानं विना कश्चिद्वैद्यः सद्भिर्न पूज्यते ॥ ततश्चातिप्रयत्नेन तज्ज्ञानं गुरुतो लभेत् ॥ ९३ ॥

टीका—अथ नाड़ीज्ञानमें प्रयत्न तो अवश्य करना सो कहते हैं नाड़ीज्ञान विना कोईभी वैद्य

श्रेष्ठजनोंमें पूज्य नहीं होता, इसवास्ते बड़ा प्रयत्न करके नाड़ीज्ञान गुरूसे लेना ॥ ९३ ॥

क्वचिद् ग्रंथानुसंधानाद्देशकालवि-
भागतः ॥ क्वचित्प्रकरणाच्चापि ना-
डीज्ञानं भवेदपि ॥ ९४ ॥

टीका–कहीं ग्रंथके अनुसंधानसे, कहीं देशकालके विभागसे, कहीं प्रकरणसे नाड़ीज्ञान होता है ॥९४॥

यथा वीणागता तंत्री सर्वान्रागा-
न्प्रभाषते ॥ तथा हस्तगता ना-
डी सर्वान्रोगान्प्रकाशते ॥ ९५ ॥

टीका–जैसे वीणामें तांत सब रागोंको भाषण करती है, तैसे हाथमें नाड़ी सर्व रोगोंका प्रकाश करती है ॥ ९५ ॥

सद्गुरोरुपदेशाच्च देवतानां प्रसाद-
तः ॥ नाडीपरिचयः सम्यक् प्रायः
पुण्येन जायते ॥ ९६ ॥

टीका–सद्गुरुके उपदेशसे और देवताकी प्रसन्नतासे और बहुधा पुण्यसे नाड़ीका पहिचानना आता है९६

अथ ग्रंथकर्तुः परंपरा ॥ बालाशर्माऽभव-
द्विप्रः सुकलः कुलवर्धनः॥कान्यकुब्जो हि

तद्वंशेऽभवद्गोवर्धनोऽभिषक् ॥९७॥ तापी-
रामः सुतस्तस्य तस्यासंस्तनुजास्त्रयः ॥
सीतारामश्च दत्तश्च मोतीराम इति प्रिये॥
॥९८॥ सीतारामप्रिया लक्ष्मीस्तत्साकं
या दिवंगता ॥ दग्ध्वाग्नौ प्राकृतं देहं त-
च्छरीरेण संयुतम् ॥ ९९ ॥ तस्या एव हि
पुत्रोऽहं पतिदेववरेऽगने ॥ निर्मितेयं मया
बाले नाडीज्ञानतरंगिणी ॥ १०० ॥

टीका—अथ ग्रंथकर्ताकी परंपरा—अगाड़ी एक बालाशर्मा कान्यकुब्ज ब्राह्मण सुकुल होते भए, सो आपके कुलके बढानेवाले होते भए. उनके वंशमें गोवर्धन सुकुल भए ॥ ९७ ॥ उनके तापीराम भए, उनके तीन पुत्र भए; सीताराम, दत्तप्रसाद, मोतीराम ॥ ९८ ॥ उनमें सीतारामकी स्त्री लक्ष्मी जो अपना प्राकृत देह अपने पतिके देहके साथ जलाके उनके संगही स्वर्गको गई ॥ ९९ ॥ हे पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ ! मैं उसी माताका पुत्र हूं यह नाड़ीज्ञानतरंगिणी मैंने रची है ॥ १०० ॥

लोलाक्षी पंपय्यानाम गंधर्वो विलग्रामे-
ऽभवत्किल ॥ तस्याहमौरसी कन्या दा-

सी त्वच्चरणाब्जयोः ॥१०१॥ तव रूपगुणौदार्यं विश्रुतं गुणवारिधे ॥ जनैः ख्यातं तथा दृष्टं कृतकृत्यास्मि सांप्रतम् ॥१०२

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजरघुनाथप्रसादविरचिता नाडीज्ञानतरंगिणी समाप्तिमगात् ।

टीका—हे गुणवारिधे, पंपय्यानाम गंधर्व विलग्रामनाम नगरमें होता भया, उसकी मैं कन्या हूं और आपके चरणकमलकी दासी हूं ॥ १०१ ॥ लोगोंकरके विख्यात आपका रूप, गुण, उदारता, सुनके आपके सन्निधि में आई सो जैसा सुना वैसा देखा. अब मैं कृतकृत्य भई ॥ १०२ ॥

इति श्रीरमणविहारिविरचिता नाडीज्ञानतरंगिणी टीका तरणीसंज्ञिका समाप्ता ।

अथ

अनुपानतरंगिणीप्रारंभः ।

नमो गजास्येश्वर देवदेव त्वत्तोऽस्यजन्मादय एव तुभ्यम् ॥ भवंति तस्मा अतईशरक्ष धन्वंतरिर्यः कृपयाऽभवस्त्वम् ॥१॥

टीका–अथ कवि प्रथम निर्विघ्नसमाप्तिके वास्ते इष्टदेवताको नमस्कारपूर्वक मंगलाचरण करते हैं न-मो इत्यादि करके हे गजास्येश्वर देव देव, तुमको मेरा नमस्कार हो, तुमहींसे इस जगतके जन्म, रक्षा, प्रल-य होते हैं और जो आप इस जगतपर कृपा करके धन्वंतरि होते भए इसवास्ते आप रक्षा करो ॥ १॥

अथ कविप्रिया ॥ प्राणेश धातवः सप्त तथा सप्तोपधातवः ॥ शोधनं मारणं तेषामनुपानं गुणागुणम् ॥ २ ॥

टीका–कविप्रिया पूछती है कि, हे प्राणनाथ, सात धातु और सात उपधातु हैं, उनका शोधन, मा-रण, अनुपान, गुण और अवगुण कहो ॥ २॥

तथान्येषां रसानां वा ह्योषधीनां च मान-द॥प्रीतये मम कंजाक्ष वदवैद्यशिरोमणे३

टीका–वैसेही और रसोंका और औषधियोंका भी मेरी प्रीतिके वास्ते कहो आप कमलनयन हैं और वैद्योंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

कविः ॥ अयि नितंबिनि कंजविलो-चने घनकुचे वनितामदमोचने ॥ शृणु वदामि हितां हि नृणामहं गद-वतामनुपानतरंगिणीम् ॥ ४ ॥

टीका—कवि उत्तर देताहै कि हे नितंबिनि, हे कंजविलोचने, इत्यादि संबोधनयुक्त प्रिये, तुम सुनो मैं अनुपानतरंगिणी कहता हूं कैसी यह अनुपानतरंगिणी कि रोगी मनुष्योंकी हितकारक ॥ ४ ॥

अथ सप्त धातवः॥स्वर्णं तारं प्रिये ताम्रं नागं वंगं मनोहरे ॥ स्वर्णांगि जसदं लोहं सप्तैते धातवः स्मृताः॥ ५ ॥

टीका—अब सप्त धातु गिनाते हैं हे प्रिये सोना१, रूपा २, तांबा ३, सीसा ४, रांगा ५, जिसे कलई भी कहते हैं. जसद ६, लोह ये ७ धातु हैं ॥ ५ ॥

जसदादित्यजं विद्धि पित्तलं प्रियवल्लभे॥ रविरंगभवं कांस्यं कश्यपान्वयरत्नजे६॥

टीका—हे प्रियवल्लभे, जसद और ताम्रसे पीतल होता है, और हे कश्यपान्वयरत्नजे, ताम्र रंगेसे कांसा होता है ॥ ६ ॥

अथ शुद्धिं प्रवक्ष्यामि धातुदोषापनुत्तये॥ तैले तक्रे च गोमूत्रे कांजिके च कुलत्थजे॥ ॥७॥ सूक्ष्मपत्राणि संताप्य नागवंगे सुगालिते॥जसदं गलितं चैव सप्तवारं विनिक्षिपेत् ॥ ८ ॥ शुद्धिमायांति संशुद्ध-

कुलोद्भूतवरांगने ॥ नागवंगे तु वार्कस्य दुग्धे वारत्रयं क्षिपेत् ॥९॥ द्रवीभूते विशुद्धेते अमीषां मारणं शृणु ॥ मृता हेमादिकाः सर्वे धातवो गदघातकाः ॥ १० ॥

टीका–अथ धातुओंके दोष दूर करनेके वास्ते शुद्धि कहते हैं. तैलमें १, तक्रमें २, तक्रको माठा और छांछभी कहते हैं, गोमूत्रमें ३, कुलथीके काढेमें ४, और कांजीमें ५, कांजीकी विधि-भातका मांड अथवा कुलथीके जूसमें सोंठ, राई, जीरा, हींग, लवण ये माफकसा मिलाके तीन वा चार दिन रख छोडे. जब खट्टा हो तब काममें लेवे. इन पांचोंमें तपा २ सात सात वखत बुझावे तो शुद्ध हो. तहां सोना १, चांदी २, तांबा ३, लोह ४, पीतल ५, कासा ६, इनके बारीक पत्र करके तप्त कर करके बुझावे. और रांगा सीसेको आकके दूधमें तीन वखत बुझालेनेसे शुद्ध होते हैं. अब इनका मारण कहते हैं क्योंकि, मरेहुए धातु रोगके मारनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

तत्रादौ स्वर्णविधिः॥ तत्रापि शुद्धस्वर्णपरीक्षा ॥ वह्नितप्तं हि यच्छी-

ते रक्तत्वं भजते च तत् ॥ शुद्धं श्वेतत्वमपि यद्भजतेऽशुद्धमीरितम् ११

टीका—तहां प्रथम धातुओंमें सोनेका मारना कहते हैं तहांभी प्रथम परीक्षा कहते हैं. जो सोना अग्निमें तपाके ठंढा किये पीछे लालरंग रहै सो श्रेष्ठ और जो श्वेत होता है सो अशुद्ध है ॥ ११ ॥

अथ मारणम् ॥ शुद्धसूतसमं खल्वे स्वर्णं गोलं विधाय च ॥ द्वयोस्तुल्यं बलिं शुद्धं दत्त्वाधश्चोर्ध्वमेव हि ॥१२॥ शरावसंपुटे दत्त्वा पुटेत्त्रिंशद्वनोपलैः ॥ चतुर्दशपुटैरेवं निरुत्थं भस्म जायते ॥१३॥

टीका—शुद्ध पारा और सोनेका चूरन खरल करके गोला बनावै फिर दोनोंकी तुल्य शुद्ध गंधक नीचे ऊपर रखके शरावसंपुटमें तीस जंगली कंडोंकी आंच दे ऐसे चौदह पुटमें निरुत्थ भस्म होता है. निरुत्थ उसको कहते हैं कि, जो मधुघृतटंकणायुक्त आंच देनेसे न जीवे ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथान्यप्रकारः॥गालिते हाटके नागं षोडशांशं विनिक्षिपेत् ॥ शीते तस्मिन्मुसंमर्द्य निंबुनीरेण गोलकम्॥१४॥तत्समं गं-

धकं शुद्धं प्रिये दद्यादुपर्यधः॥ शरावसंपुटे दत्त्वा पुटं त्रिंशद्वनोपलैः॥१५॥ एवं सप्तपुटैर्भस्म निरुत्थं स्वर्णजं भवेत्॥ नवयौवनसौंदर्यशालिनि स्वर्णभूषणे ॥ १६ ॥

टीका–अथ दूसरी विधि. सोनेको अग्निमें गलावे जब गलजाय तब सोलह तोले सोनेमें एक तोला सीसा मिला दे. फिर ठंढा करके निंबूके रसमें घोटके गोला बनावे फिर शरावसंपुटमें उस गोलेकी बराबर शुद्धगंधक नीचे ऊपर रखके तीस जंगली कंडोंकी पुट दे. ऐसे सात पुटमें निरुत्थ भस्म होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथान्यः ॥ सौवीरमंजनं पिष्ट्वा मार्कवस्वरसैर्दहेत्॥ जातरूपस्य पत्राणि शरावेसंपुटे पुटेत् ॥ १७॥ गजाख्येन पुटेनैकेनांगने गजगामिनि ॥ हेमभूतिर्भवेच्छुद्धा रत्नभूषणभूषिते ॥ १८ ॥

टीका–अब तृतीय विधि लिखते हैं. काले सुरमाकी डली, जल, भांगरेके रसमें घोटके सोनेके पत्रोंमें लेप लगावे और शरावसंपुटमें पुट दे तो एकही गजपुटमें शुद्ध भस्म होगा ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ हेमभस्मसामान्यगुणाः ॥ तपनीयं मृतं कांतिं कंदर्पं तनुते तथा॥वातं पित्तं प्रमेहं च कासं श्वासं क्षतं क्षयम्॥१९॥ग्रहणीमतिसारं च ज्वरं कुष्ठं विषं हरेत्॥वयसः स्थापनं स्वर्यं वल्यं वृष्यं रुचिप्रदम् २०

टीका–अथ सोनेकी भस्मके सामान्य गुण कहते हैं. मरा सोना कांति और कामदेवकी वृद्धि करता है और वात, पित्त, कफ, प्रमेह, श्वास, घाव, क्षयरोग, संग्रहणी, अतीसार, ज्वर, कुष्ठ, विष इन रोगोंका नाश करता है और अवस्थाका स्थापन करनेवाला है, स्वर सुंदर करता है, वल वढ़ाताहै, स्त्रीगमनकी इच्छा ज्यादा वढ़ाता है और अन्नपर रुचि वढ़ानेवाला है १९।२०

अथापक्वदोषाः ॥स्वर्णमपक्वं हरते वलं च वीर्यं करोति रोगचयम् ॥ सुखस्य नाशं मरणं तस्माच्छुद्धं च सेवेत ॥ २१ ॥

टीका–अब अधपके सोनेके अवगुण कहते हैं. अधपका सोना वल और वीर्यको नाश करता है और सुखका भी नाश और मरण भी करता है. इसवास्ते शुद्ध भस्मको सेवन करना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ तद्दोषशांतिः ॥ अभया सितया

भुक्ता त्रिदिनं न्दभिरंगने ॥ हेमदोषहरी ख्याता सत्यं प्राणकुमारिके ॥ २२ ॥

टीका–अब अपक्वदोषशांति कहते हैं. हरड़ और शक्कर तीन दिन खानेसे स्वर्णविकार जाता है. हे प्राणकुमारि ! यह सत्य है ॥ २२ ॥

अथानुपानम् ॥ वाजीकरं भृंगरसेन तूर्णं दुग्धेन शक्तिं प्रददाति नित्यम् ॥ पुनर्नवायुग् नयनामयघ्नं जराहरं चाज्ययुतं नराणाम् ॥ २३ ॥

टीका–अब अनुपान कहते हैं. सोनेकी भस्म भांगरेके रसमें लेनेसे वाजीकरण है. वाजीकरण उसको कहते हैं, जिसके लेनेसे घोड़ासरीखा स्त्रीके संग रमणकरै. दूधके संग ले तो शक्ति बढावे पुनर्नवासंग नेत्ररोग हरता है, घृतसंग वृद्धपनेको मिटाके ज्वान करता है ॥ २३ ॥

बुद्धिदं तु वचायुक्तं दाहघ्नं कटुकायुतम् ॥ कांतिदं कुंकुमेनेदं कांतिजिन्नवनीरजे ॥ २४ ॥

टीका–बचके साथ बुद्धि देता है. कुटकीके साथ

अथ हेमभस्मसामान्यगुणाः ॥ तपनीयं मृतं कांतिं कंदर्पं तनुते तथा॥वातं पित्तं प्रमेहं च कासं श्वासं क्षतं क्षयम्।१९।ग्रहणीमतिसारं च ज्वरं कुष्ठं विषं हरेत्॥वयसः स्थापनं स्वर्यं वल्यं वृष्यं रुचिप्रदम्.२०

टीका–अथ सोनेकी भस्मके सामान्य गुण कहते हैं. मरा सोना कांति ओर कामदेवकी वृद्धि करता है ओर वात, पित्त, कफ, प्रमेह, श्वास, घाव, क्षयरोग, संग्रहणी, अतीसार, ज्वर, कुष्ठ, विष इन रोगोंका नाश करता है ओर अवस्थाका स्थापन करनेवाला है, स्वर सुंदर करता है, वल वढ़ाताहै, स्त्रीगमनकी इच्छा ज्यादा वढ़ाता है ओर अन्नपर रुचि वढ़ानेवाला है १९।२०

अथापक्वदोषाः ॥स्वर्णमपक्वं हरते वलं च वीर्यं करोति रोगचयम् ॥ सुखस्य नाशं मरणं तस्माच्छुद्धं च सेवेत ॥ २१ ॥

टीका–अव अधपके सोनेके अवगुण कहते हैं. अधपका सोना वल ओर वीर्यको नाश करता है. ओर सुखका भी नाश ओर मरण भी करता है. इसवास्ते शुद्ध भस्मको सेवन करना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ तद्दोषशांतिः ॥ अभया सितया

मुक्ता त्रिदिनं नृभिरंगने ॥ हेमदोपहरी
ख्याता सत्यं प्राणकुमारिके ॥ २२ ॥

टीका—अब अपक्कदोपशांति कहते हैं. हरड़ और शक्कर तीन दिन खानेसे स्वर्णविकार जाता है. हे प्राणकुमारि ! यह सत्य है ॥ २२ ॥

अथानुपानम् ॥ वाजीकरं भृंगरसेन तूर्णंदुग्धेन शक्तिंप्रददाति नित्यम् ॥ पुनर्नवायुग् नयनामयघ्नं जराहरं चाज्ययुतं नराणाम् ॥ २३ ॥

टीका—अब अनुपान कहते हैं. सोनेकी भ भांगरेके रसमें लेनेसे वाजीकरण है. वाजीकरण सको कहते हैं, जिसके लेनेसे घोड़ासरीखा स्त्रीसंग रमणकरै. दूधके संग ले तौ शक्ति बढ़ावे नेवासंग नेत्ररोग हरता है, घृतसंग वृद्धपने मिटाके ज्वान करता है ॥ २२ ॥

बुद्धिदं तु वचायुक्तं दाहघ्नं कटुकायुतम् ॥ कांतिदं कुंकुमेनेदं कांतिजिः वनीरजे ॥ २४ ॥

टीका—बचके साथ बुद्धि देता है. कुटकीके

दाहशांति करता है. कुटकीको कडूभी कहते हैं केसरसंग कांति वढाता है ॥ २४ ॥

सद्योदुग्धयुतं हंति यक्ष्माणमतिदारुणम् ॥ लवंगशुंठीमरिचैरुन्मादं च त्रिदोषकम् ॥ २५ ॥

टीका—तुरत दुहे दूधके साथ क्षयरोग दूर करता है. लवंग, सोंठ, कालीमीरचके साथ उन्मादरोग हरता है और त्रिदोपको भी हरता है ॥ २५ ॥

मध्वामलकसंयुक्तं ग्रहणीं प्रवलां हरेत् ॥ मधुना वरखं हैमं विषदोषनिवारणम् ॥ २६ ॥

टीका—मधु और आमलाके साथ संग्रहणीको सोनेके वरख और मधुयुक्त विपको हरता है ॥२६॥

शंखपुष्पीरसैरायुःप्रदं चंदनचर्चिते ॥ विदारीकंदसंयुक्तं पुत्रदं पुत्रवत्सले ॥ २७ ॥

टीका—संखाहूलीके रससंग आयुष्य बढ़ता है. विदारीकंदके संग पुत्र देनेवाला है ॥ २७ ॥ इति स्वर्णानुपानानि.

अथ रौप्यविधिः॥ तत्र परीक्षा ॥ शृणु हि रूपमतिप्रमदोत्तमे वद भिपग्वर

रूपगुणाकर ॥ त्रिविधमाहुरये रजतं प्रिये खनिजवेधजवंगजमार्यकाः२८

टीका—अथ—रौप्यविधि, तहां प्रथम परीक्षा. रूपा तीन प्रकारका है एक खानिसे पैदा, दूसरा वेधसे, तीसरा वंगसे पैदा होता है ॥ २८ ॥

उत्तमं वंगजं वेधजं कीर्तितं यन्मृदुत्वं हि शौक्ल्यं भजेदंगने ॥ शुभ्रवर्णं मृदुत्वेन हीनं यतोऽग्राह्यमित्याहुरार्याः खनिस्थं ततः ॥ २९ ॥

टीका—तिनमें वेधसे और वंगसे भी उत्पन्न रौप्य जो कोमल और श्वेतवर्ण है सो श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

अथ मारणम् ॥ तारपत्राणि सूक्ष्माणि कृत्वा संशोध्य पूर्ववत् ॥ तत्समौ सूतगंधौ च कांजिकेन विलेपयेत् ॥ ३० ॥

टीका—अथ मारणविधि- चांदीके कंटकवेधी सूक्ष्म पत्र करके पूर्ववत् शोधन करै- उन पत्रोंके समान पारा, गंधकको काजीमें घोटके लेप करै ॥ ३० ॥

स्थाल्यां पचेद्दिनं रुद्ध्वा भस्म स्यात्तीक्ष्णवह्निना ॥ बालकैणाक्षि बिंबोष्ठि स्वर्णकुंभकुचे प्रिये ॥ ३१ ॥

टीका-फिर उनको एक हांडीमें मुद्रित करके एक दिन तीक्ष्ण अग्निकी जांच दे तो भस्म हो ३१

अथान्यः प्रकारः ॥ तारपत्रचतुर्थांशं शुद्धतालं विमर्दयेत् ॥ जंबीरजैर्द्रवैस्तेन तत्पत्राणि विलेपयेत् ॥ ३२ ॥

टीका-अथ दूसरा प्रकार रूपेके पत्रसे चतुर्थभाग शुद्ध हरिताल निंबूके रसमें घोटके लेपन करै ॥३२॥

संपुटे पाचयेद्बुद्धा त्रिभिरेव पुटैर्भवेत् । त्रिंशद्वनोपलैर्भूतिः शीलरूपगुणान्विते ॥ ३३ ॥

टीका-फिर शरावसंपुट करके तीस जंगली कंडोंकी आंच दे. ऐसी तीन पुटोंमें भस्म होती है ३३

अथान्यः ॥ रजतेन समं सूतं पेषयित्वा प्रमेलयेत् ॥ तत्समं तालकं गंधं निंबुनीरैर्विमर्दयेत् ॥ ३४ ॥

टीका-अथ तीसरा प्रकार. प्रथम रूपा और पारा दोनों समभाग लेके खरल करै. फिर इन दोनोंके बरोबर हरिताल और गंधक मिलाके निंबूके रसमें घोटै ॥ ३४ ॥

संपुटे रोधयित्वा तु पाच्यं त्रिंशद्वनो-

घलैः ॥ एवं रामपुटैस्तारं निरुत्थं भसितं भवेत् ॥ ३५ ॥

टीका–फिर शरावसंपुटमें तीस कंडोकी पुट दे ऐसे तीन पुटोंमें भस्म होता है ॥ ३५ ॥

अथान्यः ॥ शुकप्रिया पीतकपत्रकल्के चतुर्गुणे तारकमेव रुद्ध्वा ॥ शरावके संपुटके पुटेच्च त्रिभिः पुटैरेव वराहसंज्ञैः ॥ ३६ ॥

टीका–अथ चौथा प्रकार. दाड़िम और बबूरके पत्र तोले चारकी लुगदीमें एक तोला रूपा रखके हाथ भर गहिरे चोड़े खाढ़ेमें शरावसंपुटसे पुट दे तो तीन पुटसे भस्म होता है ॥ ३६ ॥

अथ गुणाः ॥ तारं करोत्यामयसिंधुपारं पित्तापहं वातकफौ निहंति ॥ गुल्मं प्रमेहं श्वसनं च कासं प्लीहक्षयक्षीणयकृद्विषार्तिम् ॥ ३७ ॥

टीका–अथ सामान्य गुण. रौप्यभस्म रोगसमुद्रके पार उतारता है. पित्त, कफ वात, गुल्म, प्रमेह, श्वास, कास, प्लीहा, क्षय, क्षीण, यकृत, विष इन रोगोंका नाश करता है ॥ ३७ ॥

वलीपलितनाशनं क्षुधाकांतिपुष्टि-

दम् ॥ पांडुशोफहं ददाति चायुषं नृणामिदम् ॥ ३८ ॥

टीका—और वलीपलितनाशकभी है. क्षुधा और तेजको बढ़ाता है. पांडु और शोथको नाश करता है. आयुष्यदायक है ॥ ३८ ॥

अथापक्वदोषाः ॥ देहे हि तापं प्रकरोत्यपक्वं तारं विबंधं किल शुक्रनाशम् ॥ अपाटवं चैव बलप्रहानिं महागदान्पालयतीति सत्यम् ॥ ३९ ॥

टीका—अथ अपकदोष. आपक रौप्यभस्म देहमें ताप, विबंध और धातुका नाश, चातुर्य और बलकी हानि करता है और बड़े रोगोंकी रक्षा करता है॥३९॥

अथ तच्छांतिः ॥ शर्करां मधुसंयुक्तां सेवयेद्यो दिनत्रयम् ॥ अपक्वरौप्यदोषेण विमुक्तः सुखमश्नुते ॥ ४० ॥

टीका—रौप्यदोषशांति. मिश्री और मधु तीन दिन खानेसे अपक रौप्यविकार मिटता है और सुख होताहै

अथानुपानम् ॥ दाहे शर्करया युक्तं वाते पित्ते वरायुतम् ॥ त्रिसुगंधयुतं मेहे गुल्मे क्षारसमन्वितम् ॥ ४१ ॥

टीका–अनुपान–दाहमें शर्करयुक्त, वात और पित्तमें त्रिफलायुक्त, प्रमेहमें तज, पत्रज, इलायचीके चूर्णयुक्त, गुल्ममें क्षारयुक्त देना ॥ ४१ ॥

कासे कफेऽटरूषस्य रसे त्रिकटुकान्विते ॥ भार्ङ्गीविश्वयुतं श्वासे क्षयजित्सशिलाजतु ॥ ४२ ॥

टीका–कास और कफमें त्रिकटु चूर्ण और अरूसेके रसयुक्त, श्वासमें भारंगी सोंठयुक्त, और क्षयमें शिलाजितयुक्त देना ॥ ४२ ॥

क्षीणे मांसरसे देयं दुग्धे वा ललनोत्तमे।यकृत्प्लीहहरं कांते वरापिप्पलिसंयुतम्।४३।

टीका–क्षीणतामें मांसका जूस अथवा दुग्धसंयुक्त, यकृत् प्लीहामें त्रिफला और पीपरीके साथदेना४३

पुनर्नवायुतं शोफे पांडौ मंडूरसंयुतम् ॥ वलीपलितहं कांतिक्षुत्करं घृतसंयुतम् ४४

टीका–शोथमें पुनर्नवाकेसाथ, पांडुमें मंडूरयुक्त, वलीपलितमें घृतयुक्त, क्षुधा और कांतिको भी बढाताहै ॥ ४४ ॥ इति रौप्यविधिः ॥

अथ ताम्रविधिः ॥ तत्र मारणयोग्यं ताम्रम् ॥ द्विविधं ताम्रं वैद्यैर्गदितं म्लेच्छं

तथैव नैपालम् ॥ क्षालनतो यच्छ्यामं तन्म्लेच्छं रक्तमेव नैपालम् ॥ ४५ ॥

टीका—अथ रोप्यविधिकथनानंतर ताम्रविधि कहते हैं. ताम्रको वैद्योंने दो प्रकारका कहा है एक म्लेच्छ, दूसरा नेपाल. जो मंजन करनेसे श्यामता पकड़ता है सो म्लेच्छ, और जो रक्तवर्ण रहता है सो नैपाल ॥ ४५ ॥

त्याज्यं वाले म्लेच्छं ग्राह्यं नैपालकं हि शुद्धतरम् ॥ शृणु तद्दोपान् शुद्धे शोधनमपि सुप्रयत्नेन ॥ ४६ ॥

टीका—तिनमें शुद्ध नैपाल ग्रहण करना और म्लेच्छको त्यागना. हे शुद्धे, उस ताम्रके दोष और शुद्धि सुनो ॥ ४६ ॥

वांतिर्भ्रांतिर्विरेकत्वं क्लमस्तापस्तथैवच ॥ वीर्यहंतृत्वं कंडुत्वे शूलं दोपाष्टकं रवौ ॥ ४७ ॥

टीका—वांति १, भ्रांति २, रेचनता ३, ग्लानि ४, ताप ५, वीर्यनाशकता ६, कंडू ७, शूल ८, ये आठ दोष ताम्रमें सदा हैं. अब इन दोषोंको मिटानेके वास्ते शोधन कहता हूं ॥ ४७ ॥

वक्ष्यमाणेषु द्रव्येषु तप्तं तप्तं विनिक्षिपेत् ॥ सप्तकृत्वः सुशुद्धः स्याद्रविरेव न संशयः ॥ ४८ ॥

टीका–अगाड़ीके श्लोकोंमें लिखेंगे. वह द्रव्य जिनमें तपा तपाके बुझावै, सात सात वेर तो शुद्ध हो ४८

तैलं तक्रं च गोमूत्रं वांतिं हन्याद्विचक्षणे ॥ कांजिकं च कुलत्थांभो भ्रांतिं हन्यात्सुदारुणाम् ॥ ४९ ॥

टीका–तेल, माठा, गोमूत्र, वांति दोष दूर करता है. कांजी और कुलथीका काढ़ा भ्रांति दूर करता है ॥ ४९ ॥

वज्रीदुग्धं च गोदुग्धं क्लमं हंति विशेषतः ॥ चिंचांभो निंबनीरं च तापं पापं यथा हरिः ॥ ५० ॥

टीका–सेहुँड थूहरका दूध और गोदुग्ध क्लम जो ग्लानि उसको मिटाता है. अमिलीका पानी और निंबूका पानी तापको हरता है ॥ ५० ॥

शीर्षिणोऽम्भस्तथा कन्या रसः शूलं निवारयेत् ॥ कंडुतां गोघृतं दुग्धं हंति वृद्धा यथा बलम् ॥ ५१ ॥

टीका—नारियलका रस तथा घीकुमारीका स्वरस शूल निवारण करता है, कंडुता (खुजली) को गोघृतयुक्त दूध हरता है ॥ ५१ ॥

हन्याद्वै वीर्यहंतृत्वं द्राक्षा क्षौद्रं नितंबिनि ॥ रेचतां सौरणं नीरं हंति मस्तु तथैव हि ॥ ५२ ॥

टीका—वीर्यनाशकपना द्राक्षा और मधु दूर करता है रेचनता सूरणका पानी और दहीका पानी हरता है ५२

अथ मारणम् ॥ रविपत्राणि तदर्धं सूतं खल्वे विमर्दयेद्गाढम् ॥ निंबुजनीरैस्तावद्यावच्छुभ्राणि तानि स्युः ॥ ५३ ॥

टीका—अब मारण कहते हैं. ताम्रपत्र बहुत पतली सूईसे छिदने माफिक करके पत्रोंसे आधे पारेके साथ मर्दन करे. जहांतक सब पत्र श्वेत हों ॥५३॥

तद्द्विगुणं शुचि गंधं धान्याम्लेन विमर्द्य संलिंपेत् ॥ पत्राणि हि दृढभांडे क्षिप्त्वा संपूरयेत्सिकतया भूत्या ॥ ५४ ॥

टीका—तिनसे दूना शुद्ध गंधक, धान्याम्लमें पीसके लेपन करै. धान्याम्ल उसको कहते हैं जो यव निस्तूप करके चार पांचदिन पानीमें भिगोये राखे.

जब खट्टा हो तब कार्यमें ले फिर ताम्रपत्र, दृढ हांडीमें रखके क्रमसे ऊपर वालू, रेत, और राख भरै ५४

रुद्ध्वा शरावपुटके पश्चाद्धांडे विनिक्षिपेल्लने ॥ मंदाग्निनाऽधियामैर्म्रियते शुल्बं नितंबविस्तारे ॥ ५५ ॥

टीका—सब पत्र पहिले दो सरावोंमें रखके हांडीमें धरै फिर रेती भस्म भरके चूल्हेपर मंदाग्निसे चार पहर आंच दे तौ ताम्र मरै ॥ ५५ ॥

पश्चात्तदर्धगंधं तद्भस्मना विमर्दयेत्खल्वे ॥ सूरणतोयैर्देयं पुटं गजाख्यं तलश्च वै पाच्यम् ॥ ५६ ॥

टीका—फिर उस ताम्रभस्मसे आधा गंधक मिलाके सूरणरसमें खरल करके गजपुट दे ॥ ५६ ॥

चतुर्थांशेन गंधेन पंचगव्यैः पृथक् पृथक् ॥ पंचकृत्वः पुटेत्ताम्रं मधुना सितया पुनः ॥ ५७ ॥

टीका—फिर भस्मसे चौथा भाग गंधक मिला न्यारा न्यारा गोदुग्ध, घृत, दही, माठा, मूत्रमें खरल कर न्यारी न्यारी पुटें दे. फिर मधु (सहत) के साथ उसी रीतिसे फिर शकरके साथ वैसेही पुट दे ॥ ५७ ॥

सेवितं चेद्यदा वांतिं विधत्ते भावये-त्पुटेत् ॥ गोक्षीरेण ततः शुद्धं शिखि-ग्रीवनिभं भवेत् ॥ ५८ ॥

टीका—फिर जो खानेसे वांति करावे तो गोदु-ग्धकी पुट देके आंच दे. जब शुद्ध मोरकी गरद-नका रंग हो जाय तो श्रेष्ठ है ॥ ५८ ॥

अथान्यः ॥ ताम्रपत्रसमं सूतं गंध-मम्लेन मर्दयेत् ॥ तेन संलिप्य प-त्राणि शरावपुटके दहेत् ॥ ५९ ॥

टीका—अथ दूसरा प्रकार. ताम्रकी बराबर गंधक पारा खटाईसे मर्दन करके पत्रोंको लेपन करके गजपुट दे ॥ ५९ ॥

गजाह्वैस्त्रिपुटैरेवं पंचता जायते ध्रु-वम् ॥ चलत्कुंडलशोभाढ्ये पीनो-त्तुंगपयोधरे ॥ ६० ॥

टीका—ऐसे तीन पुटोंसे भस्म होता है ॥ ६० ॥

अथान्यः ॥ तुर्यांशेन शिवेनैव ता-म्रपत्राणि लेपयेत् ॥ अम्लपिष्टब-लिं दद्यादूर्ध्वाधोद्विगुणं ततः ॥ ६१ ॥

टीका—अथ तीसरा प्रकार. ताम्रपत्रसे चौथे भाग-

मारेसे ताम्रपत्र लेपन करके उनसे दूना गंधक लटाईमें पीसके नीचे ऊपर रखके ॥ ६१ ॥

चांगेरीकल्कगर्भे तद्यामं स्थाल्यां विपाचयेत् ॥ पंचत्वं जायते शुल्वं सर्वरोगहरं भवेत् ॥ ६२ ॥

टीका—लोनीकी लुगदीमें रखके हांडीमें एक पहरकी तेज आंच दे तो भस्म हो. इति ॥ ६२ ॥

अथ सामान्यभस्मगुणाः ॥ कासं श्वासं कफं वातं प्लीहानमुदरं क्रमीन् ॥ कुष्ठं शूलं ज्वरं तंद्रां वमिं शोफं च पांडुताम् ॥ ६३ ॥

टीका—अथ सामान्य भस्मगुण. कास, श्वास, कफ, प्लीहा, वात, उदररोग, कृमी, कुष्ठ, शूल, ज्वर, आलस्य, छर्दि, शोफ, पांडुरोग ॥ ६३ ॥

मोहमर्शोऽतिसारं च क्षयं गुल्मं शिरोव्यथाम् ॥ हिक्कां मेहं भ्रमं हंति रविर्वह्निं विबोधयेत् ॥ ६४ ॥

टीका—मूर्च्छा, अर्शरोग, अतिसार, क्षय, गुल्म, शिरकी दर्द, हिचकी, प्रमेह, भ्रम, इतने रोगोंको हरता है और भूंख बढ़ाता है ॥ ६४ ॥

अथापक्वदोषाः ॥ ताम्रमपक्वं वमनं विरे-

कतापादिकं भ्रमं मूर्च्छाम् ॥ मेहं वलस्य नाशं करोति शुक्रस्य चायुपश्चापि ॥६५॥

अथ–अथ अपकदोष. अधपका ताम्रभस्म वमन, विरेचन, ताप, भ्रम, मूर्च्छा प्रमेह, बलका नाश, वीर्य और आयुष्यका भी नाश करता ॥६५॥

अथ दोषशांतिः ॥ मुनिव्रीहिसितापानं वा धान्याकं सितांचकैः ॥ ताम्रदोपमशेपं वै पिवन्हन्यादिनत्रयात् ॥ ६६ ॥ कैः जलैरित्यर्थः ॥

टीका–अथ ताम्रदोपशांति कहते हैं, तिली अथवा धना. शकर जलसे तीन दिन पिये तो ताम्रदोपसे छूटे ॥ ६६ ॥

अथानुपानम् ॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तं सर्वरोगेपु योजयेत् ॥ स्वबुद्ध्यापि प्रयुंजीत रोगनाशनवस्तुभः ॥ ६७ ॥

टीका–अथ अनुपान. पीपरि सहत, संग सब रोगोंमें देवे अथवा अपनी बुद्धिमाफिक रोगनाशक वस्तुके साथ दे तो रोग जावे ॥ ६७ ॥

अथ नागविधिः॥पूर्वं तच्छोधनम्॥कुमारीस्वरसेवापि वराक्काथे सुगालयेत्॥ तप्तं तप्तं सप्तकृत्वो नागः शुद्धतरो भवेत्।६८।

टीका–अथ नागविधि कहते हैं. तत्र प्रथमशोध न कहते हैं. घीकुमारिपाठाके रसमें वा त्रिफलाके कषायमें सात वेर गलाके बुझावे तो नाग शुद्ध हो ६८

तालकस्वरसे वारान् चत्वारिंशद्विगालयेत् ॥ तप्तं तप्तं विशुद्ध्येत नागो नागेंद्रगामिनि ॥ ६९ ॥

टीका–अथवा ताड़ीमें चालीस बार बुझावे तो शुद्ध हो ॥ ६९ ॥

अथ मारणम् ॥ खर्परे निहितं नागं रविमूलेन घट्टयेत् ॥ यामत्रिकैर्भवेद्भस्म हरिद्वर्णमदूषणम् ॥ ७० ॥

टीका–अथ मारण. माटीके कूंड़ेमे सीसा रखके चूल्हेपर आंच दे और आकड़ेकी जड़से चलाताजाय तो तीन पहरमें हरा रंग भस्म होता है ॥ ७० ॥

अथान्यः ॥ मर्दितो वृषतोयेन नागः कुंभपुटैस्त्रिभिः ॥ सशिलो म्रियते सत्यं सर्वरोगहरो भवेत् ॥ ७१ ॥

टीका–प्रकार दूसरा–सीसाकी बरोबर मैनशिल मिलाके अरूसाके रसमें मर्दन कर एक घड़ेमें बहुतसे छिद्र कर कोयला आधा घड़ा भर नीचमें सं-

पुटमें सीसा रखके ऊपर फिर कोयला भरके अग्नि देवे, ऐसे तीनवारमें भस्म होता है ॥ ७१ ॥

अन्योऽपि ॥ भूलताऽगस्तिपत्राणि पिष्ट्वा पात्रं विलेपयेत् ॥ वासापामार्गजं क्षारं तत्र नागे द्रुते क्षिपेत् ॥७२॥ गुरूक्तितश्चतुर्थांशं वासादर्व्या विघट्टयेत् ॥ यामैकेन भवेद्भस्म ततो वासारसान्वितम् ॥ मर्दयेत्संपुटेत्स्याद्वै नागसिंदूरकं शुभम् ॥७३॥

टीका—तीसरा प्रकार. कचुवा और अगस्तवृक्षके पत्र पीसके पात्रमें लेपन कर ऊपर सीसा धर चूल्हेपर चढावे, जब सीसा गले तब अरूसा और अपामार्गका क्षार सीसासे चौथा भाग डालता जाय और अरूसाकी मोटी लकड़ीसे चलाता जाय तो एक पहरमें भस्म हो फिर अरूसाके रसमें खरल कर गजपुट दे तो लाल भस्म होजाय ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथान्यः ॥ शुद्धं नागं समादाय द्विगुणा च मनःशिला ॥ पलाशदारुणा सम्यग्घर्षयेत् खर्परे शुभे ॥७४॥

टीका—चौथा प्रकार. शुद्ध सीसासे दूना मैनसील खर्परमें चढ़ा, पलासकी लकड़ीसे चलावे और तीव्र आंच दे तो भस्म हो ॥ ७४ ॥

तीक्ष्णाग्निना मृतं नागं तुर्यांशां च मनःशिलाम् ॥ तांबूलस्वरसैर्मर्द्य शरावे पुटके पुटेत् ॥ द्वात्रिंशतिपुटै-रेवं नागभूतिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ७५ ॥

टीका–फिर चौथे भागकी मैनशिल मिलाके नागवेलीके पानके रसमें घोटके पुट दे ऐसे ३२ बत्तीस पुटमें भस्म होता है ॥ ७५ ॥

भागैकमहिफेनस्य नागभागचतुष्टयम् ॥ घर्षणान्निंबकाष्ठेन मंदवह्निप्रदानतः ॥ नागभूतिर्भवेच्छ्वेता वीर्यदार्ढ्यकरी मता ॥ ७६ ॥

टीका–पांचवां प्रकार-सीसासे चौथा भाग अफीम खपरेमें दोनोंको आंच दे और निंबूकी लकड़ीसे चलाता जाय तो श्वेतभस्म हो. खानेसे वीर्य दृढकरे ७६

अथ नागेश्वरविधिः ॥ पलद्वयं मृतं नागं हिंगुलं च पलद्वयम् ॥ शिला कर्षमिता ग्राह्या सर्वतुल्यंहि गंधकम् ॥७७॥ निंबुनीरेण संमर्द्य ततो गजपुटे पुटेत् ॥ तदा नागेश्वरोऽयं स्यान्नगराजसुतोपमे ॥ ७८ ॥

टीका–अथ नागेश्वरविधि–सीसाभस्म तोला

आठ, हिंगुल तोला आठ, मैनसिल तोला एक, गंधक तोला सत्रह, निंबूके रसमें खरल कर गज-पुट दे तो नागेश्वर होता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ सामान्यगुणाः ॥ वातरोगं क्षयं गुल्मं पांडुशूलभ्रमान् कफम् ॥ वह्निमांद्यं शुक्रदोषं कासार्शोग्रहणीकृमीन् ॥७९॥ अपमृत्युं निहत्याशु शतनागसमं बलम् ॥ ददाति चायुषो वृद्धिं चेत्कृतं विधिना प्रिये८०

टीका–अथ साधारणगुण–वात, क्षय, गुल्म, पांडु, शूल, भ्रम, कफ, अग्निमंद, धातुविकार, कास, अर्श, संग्रहणी, कृमि, अकालमृत्यु इतने रोगोंको हरै और शतहस्तिबल आनंद दे. आयुष्य बढावे ॥७९॥८०॥

अथापक्वदोषाः ॥ रक्तदोषं कफं पांडुं कुष्ठगुल्मारुचिक्षयान् ॥ ज्वराश्मयौकरोत्येव कृच्छ्रशूलभगंदरान् ।८१।

टीका–अथ अपक्वदोष–रक्तदोष, कफ, पांडु, कुष्ठ, गुल्म, अरुचि, क्षय, ज्वर, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भगंदर, इन रोगोंको उत्पन्न करै ॥ ८१ ॥

अथ तच्छांतिः ॥ हेमां हरीतकीं सेवेत्सितायुक्तां दिनत्रयम् ॥ अपक्वनागदोषेण विमुक्तः सुखमश्नुते ॥८२॥

टीका—अथ नागदोषशांति-चौक और हरड़ शकरसे तीन दिन सेवन करे तो अपक्क नागदोषसे छूटे ८२

अथानुपानम् ॥ मृतं नागं सिता सार्धं मायुं वायुं शिरोव्यथाम् ॥ नेत्ररोगं शुक्रदोषं प्रलापं दाहकं जयेत्॥८३॥प्रददाति रुचिं कामं वर्धयेत्पथ्यसेविनः॥ स्वबुध्या चान्यरोगेषु प्रदद्याद्रोगशांतिकृत् ॥८४॥

टीका—अथ अनुपान—सीसाभस्म, मिश्री, (खड़ी साकर) से ले तो पित्त, वात, मस्तकरोग, नेत्ररोग, वीर्यदोष, प्रलाप, दाह इनको दूर करे, अन्नरुचि उपजावे. कामवृद्धि करे. और रोगोंमें अपनी बुद्धिसे देवे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ नागेश्वरानुपानम् ॥ निशांते नागराजं यः सेवयेल्लग्ने पुमान् ॥ नागवल्लीदलेनाहं यथा नीरुक् प्रकामवान् ॥८५॥ भवेन्नारीशतं भुक्त्वा तथाप्यंबुजलोचने ॥ तृप्तिं न याति कामस्य नित्यवृद्धिमवाप्नुयात् ॥ ८६ ॥

टीका—अथ नागेश्वर अनुपान—जो मनुष्य रात्रिके अंत दो घड़ी रात रहे तब नागवल्लीपत्रके साथ

नागेश्वर सेवे तिसके रोगमात्र न रहै और कामकी वृद्धि हो सो मनुष्य सौ १०० स्त्रियोंसे भी तृप्त न हो. इति नागविधिः ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

अथ वंगविधिः॥ तत्र वंगपरीक्षा ॥ शुभ्रं सुकठिनं वंगं ग्राह्यं वैद्यवरैः सदा ॥ अन्यथा-तुविमिश्रं चेत्त्याज्यमेवमनर्थकम् ॥८७॥

टीका–अथ नागविधिकथनानंतर वंगकी विधि कहते हैं. प्रथम तत्र वंगपरीक्षा श्वेत और कठिन देखके ले. अन्यमें और धातु मिली है सो त्याज्य है ॥८७॥

अथ मारणम् ॥ वंगतुल्यं वराचूर्णं निंबकाष्ठेन घर्षयेत् ॥ खर्परे भस्मतां यातं सर्वकार्येषु योजयेत्॥८८॥

टीका–अथ मारणम्–रांगेकी बराबर त्रिफलाचूर्ण खपरेमें चढ़ा निंबके सोंटेसे घोटै. जब भस्म हो तब सर्व कार्यमें युक्त करै ॥ ८८ ॥

अथान्यः॥ वंगपादांशतो ग्राह्यमपामार्गभवं रजः॥ स्थूलाग्रया लोहदर्व्या खर्परे तं विघट्टयेत् ॥ ८९ ॥ शनैर्भस्मत्वमायाति तावन्मर्द्यं पुनः शनैः॥एकत्र च ततः कृत्वा यावदंगारवर्णताम् ॥९०॥ भजेत्पश्चाच्छ-

रावेण नूतनेन विरोधयेत् ॥ ततस्तीव्राग्निसंपर्कं वंगं भूतित्वमाप्नुयात् ॥ ९१ ॥

टीका—दूसरी विधि. वंगका चौथा भाग अपामार्ग जिसको लटजीरा और चिरचिरा और अद्धाझारो और अधेड़ाभी कहते हैं. सो खपरेमें अग्निपर चढ़ाके बड़ी लोहेकी कलछीसे घोटता जाय. धीरे धीरे घोटनेसे जबतक भस्म न हो तबतक घोटना फिर एक जगह करके खूब आंच दे. जब लाल अग्निसरीखा हो तब शीतल कर शरावसंपुटमें गजपुट दे तो श्वेतभस्म हो ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अथ वंगेश्वरविधिः ॥ भागचतुष्कं वंगं मृतं हि शंखं रसं विभागेकम् ॥ पृथग्द्विकं हरितालं कांजिकपिष्टं शरावसंपुटके ॥९२॥ पुटेद्गजाख्ये यंत्रे घनकुचयुग्मे निशेशमुखि बाले ॥ वंगेश्वरोऽयमबलेवलदो नृणां हि रसिकानाम् ९३

टीका—अथवंगेश्वरविधिः। वंगभस्म चार तोला, शंखभस्म एक तोला, पाराभस्म एक तोला, हरिताल दो तोला, कांजीमें पीसके शरावसंपुटमें गजपुट दे तो वंगेश्वर हो ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अथ सामान्यगुणाः ॥ श्वसनमेहसमीरणनाशनः प्रदरशूलयकृत्कफपांडुहृत् ॥ भ्रमवमिक्षयचिद्दलवीर्यकृत् सकलरोगहरः शुचिवंगकः ॥ ९४ ॥

टीका–अथ साधारणगुण–श्वास, प्रमेह, प्रदर, शूल, यकृत्, कफ, पांडु, भ्रम, उलटी, क्षय, सर्व रोगनाशक और बल वीर्यका बढानेवाला है ॥९४॥

अथ वंगेश्वरगुणाः ॥ भ्रमतिमिरकफप्रमेहकासान् श्वसनपवनपित्तरक्तदोषान् ॥ ग्रहणिगदसशूलकुष्ठपांडुज्वरगदमपि हंति वंगराजः ॥ ९५ ॥

टीका–अथ वंगेश्वरके गुण- भ्रम, तिमिर, कफ, प्रमेह, कास, श्वास, वात, पित्त, रक्तदोष, संग्रहणी, शूल, कुष्ठ, पांडु, ज्वर इन रोगोंको हरे ॥९५॥

अथापक्वदोषाः ॥ यद्यपक्वं भवेद्वंगं गुल्मकुष्ठप्रमेहकृत् ॥ वातशोणितमंदाग्निपांडदौर्बल्यरुक्प्रदम् ॥ ९६ ॥

टीका–अथ अपक्व दोष–अधपक्व [illegible] कुष्ठ, प्रमेह, वात, रक्त, मंदाग्नि, पांडु, [illegible] रोग करता है ॥९६॥

अथ तच्छांतिः ॥ मेषशृंगीं सितायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम् ॥ वंगदोषविमुक्तोऽसौ सुखं जीवति मानवः ॥ ९७ ॥

टीका—अथ वंगदोषकी शांति—जो मनुष्य मेढ़ाशिंगी शक्करसंग तीन दिन सेवन करे तो वंगविकार शांति हो ॥ ९७ ॥

अथानुपानम् ॥ कर्पूरेण युतं वंगं हरत्यास्यविगंधताम् ॥ पौष्टिके क्षीरसंयुक्तं जातीफलयुतं तु वा ॥ ९८ ॥

टीका—अथ अनुपान कपूरसाथ वंग सेवन करनेसे मुखदुर्गंधि हरता है, दूधसंग वा जायफलसंग पुष्ट करता है ॥ ९८ ॥

प्रमेहे तुलसीपत्रैः खादेद्वंगं प्रसन्नधीः ॥ गुल्मे टंकणसंयुक्तं पांडुरोगे घृतेन च ॥ ९९ ॥

टीका—प्रमेहको तुलसीपत्रसे, गुल्ममें टंकणक्षारसंग और पांडुरोगमें घृतसंग ॥ ९९ ॥

ऊर्ध्वश्वासे रक्तपित्ते निशाया भक्षयेत्सुधीः ॥ पित्ते शर्करया खादेन्मधुना बलवृद्धये ॥ १०० ॥

टीका—ऊर्ध्वश्वास और रक्तपित्तमें हलदीसंग, पित्तमें शक्करसंग, बलवृद्धिके वास्ते मधुसंग ॥ १०० ॥

वीर्यस्तंभाय कस्तूर्या नागवल्लीदलेन वा ॥ मंदाग्नौ मगधाचूर्णं कस्तूरीसंयुतं भजेत् ॥ १ ॥ कंकोलस्य रजोयुक्तं मंदाग्नौ वा भजेन्नरः ॥ खदिरकाथसंयुक्तं वर्त्मरोगे प्रशस्यते ॥२॥

टीका—वीर्यस्तंभनके वास्ते कस्तूरी वा पानसंग, मंदाग्निमें पिपरी और कस्तूरीसंग, अथवा कंकोल के चूर्णसंग, नेत्रके पंकलरोगमें खैरके काढेमें ॥१॥२॥

धात्रीफलयुक्तं वापि पूगचूर्णसमन्वितम्॥सेवितं हरतेऽजीर्णं रसोनेनास्थिगं ज्वरम् ॥ ३ ॥

टीका—अजीर्णमें आमला वा सुपारीसंग, हड्डीगत ज्वरमें लहसनसंग सेवन करना ॥ ३ ॥

कुष्ठे सिंधुफलैः सार्धं निर्गुंडीस्वरसेन वा ॥ कौब्जेऽपामार्गमूलेन प्लीह्नि टंकणसंयुतम् ॥ ४ ॥

टीका—कुष्ठरोगमें समुद्रफल वा निर्गुंडीके स्वरसमें, कूबररोगमें अपामार्गकी जड़में और प्लीहारोगमें टंकणक्षारसंग देना ॥ ४ ॥

दिव्यसमुद्रफलाभ्यां वंगं संमर्द्य ना-

गवल्लिजलैः ॥ प्राणप्रिये विलिंपति
ना यदि लिंगं भवेद्धि दीर्घतरम्॥५॥

टीका—लवंग और समुद्रफलसाथ वंग नागवेलिके पत्ररसमें मर्दन करके लिंगमें लेप करे तो लिंग बडा हो ॥ ५ ॥

लवंगरोचनायुक्तं तिलकं जनवश्यकृत् ॥
लवंगैरंडमूलाभ्यां लेपश्चार्द्धावभेदके ॥६॥

टीका—लवंग और गोरोचनसाथ तिलक करे तो जन वश्य हो. लवंग और एरंडमूलके साथ लेप करे तो अर्धावभेद अर्थात् आधासीसी जावे ॥ ६ ॥

यवानिकायुतं वाते वाजिगंधायुतं तु वा ॥
जलोदरेऽप्यजाक्षीरसंयुतं गुणकृद्भवेत् ७

टीका—वातरोगमें अजमा वा असगंध, जलोदरमें बकरीके दूधसंग देवे तो गुण करनेवाला होना [illegible]

पुत्राप्त्यै रासभीक्षीरैस्तक्राद्यं [illegible]
गुल्मनुत् ॥ कर्कटीस्वरसैः [illegible]
रुषत्वमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥

टीका—पुत्रप्राप्तिके वास्ते ग[illegible]
ल्ममें मठ्ठासंग और नपुंसकको [illegible]
तो पुरुषत्व प्राप्त होता है ॥

अपामार्गरसैर्वेगं शिरोरोगनिवारणम् ॥ शाल्हकमालतीपत्रीलवंगैर्धातुदोषनुत् ॥ ९ ॥

टीका-मस्तकरोगमें अपामार्गके रसमें, धातुविकारमें जावत्री जायफल लवंगसंग देना ॥९॥

जातीफलाश्वगंधाभ्यां कटिपीडानिवारणम् ॥ रसोनतैलयुग्नस्यमपस्मारनिषूदनम् ॥ ११० ॥

टीका-कटिपीडामें जायफल और असगंधसंग, अपस्मारमें लहसुन और तेल युक्तनास देना ११०

जातीफललवंगाढयं मधुना कसनं जयेत् ॥ सुरसास्वरसैर्वेगं बलदं हि नृणामिदम् ॥११॥

टीका-कासमें जायफल लवंग मधुसंग अथवा तुलसीरससें सेवन किया मनुष्यको बल देता है ११

अथ जसदविधिः ॥ तच्छोधनं वंगवत् ॥ अथ मारणम्॥जसदस्य तु पत्राणि कृत्वा सूक्ष्मतराणि च॥तत्पादांशौ शिलागंधावर्कदुग्धविमर्दितौ ॥ १२ ॥ लेपयेत्तेन पत्राणि शरावाभ्यां निरोधयेत् ॥ गजाह्व संपुटेदेवं द्वादशैर्म्रियते पुटैः ॥ १३ ॥

टीका—अथ जसदविधिः—तत्र शोधनं वंगवत्—अथ मारण.—जसदके सूक्ष्म पत्र करे. तिसका चौथा भाग मैनशील और गंधक आंकड़ेके दूधमें खरल कर पत्रोंमें लेप कर शरावसंपुटमें गजपुट दे. ऐसे बारह पुटों करके शुद्ध भस्म होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ जसदस्य चतुर्थांशं पारदं गंधकं प्रिये ॥ मर्दयेत्खल्वके सम्यक्कन्यानिंबुरसैः पृथक् ॥ १४ ॥ लेपयेत्तेन पत्राणि गजाह्वे पाचयेत्पुटे ॥ एवमेकपुटेनैव भस्मसाज्जसदं भवेत् ॥ १५ ॥

टीका—अथ दूसरीविधि.—जसदपत्रके चौथा भाग पारा और गंधक घीकुमारपाठेके रसमें खरल कर फिर निंबूके रसमें खरल कर पत्रोंमें लेप कर शरावसंपुटमें गजपुट दे तो एक पुटमें भस्म हो ॥१४॥१५

मारयेद्वंगवद्वापि नागवद्वा विचक्षणे ॥ तेन भस्मत्वमायाति सर्वकार्यकरं भवेत् ॥ १६ ॥

टीका—अथवा वंग वा सीसाकी रीतिसे मारे तो भस्म होता है और कार्यकरनेवाला होता है ॥१६॥

अथ सामान्यगुणाः॥ त्रिदोषप्रमेहाग्निमांद्याक्षिरोगानतीसारपित्तज्वराजीर्ण-

कासान् ॥ विबंधामवातं हरेद्रांतिहेतुर्वमिं शूलशीतज्वरास्रस्रुतीश्च ॥ १७ ॥

टीका–अथ साधारणगुण. त्रिदोष प्रमेह, अग्निमांद्य, नेत्ररोग, अतिसार, पित्तज्वर, अजीर्ण, कास, विबंध, आमवात, वांति, शूल, शीतज्वर, रक्तातिसार इनको नाश करे ॥१७॥

अथापक्वदोषाः ॥ अपक्वं जसदं रोगान् प्रमेहाजीर्णमारुतान् ॥ वमिं भ्रमं करोत्येनं शोधयेन्नागवत्ततः ॥१८ ॥

टीका–अथ अपक्वदोष.–अपक्व जसद, प्रमेह, अजीर्ण, वात, वांति, भ्रम इनको पैदा करता है इससे सीसाके माफक शोधना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ शांतिः ॥ बालाभयां सितायुक्तां सेवयेद्यो दिनत्रयम् ॥ जसदस्य विकारोऽस्य नाशमायाति सत्वरम् ॥ १९ ॥

टीका–अथ शांति.–बालहरड़ शकरसंग तीन दिन सेवन करै तो जसदविकार जाय ॥१९॥

अथानुपानम् ॥ जसदं भिषजां वसुदं ललने प्रवदाम्यनुपानमहं सुखदम् ॥ त्रिसुगंधयुतं भसितं ह्यशितं त्रिमलोद्भवमाशु निहंति गदम् ॥२०॥

टीका–अथ अनुपान–तज, तमालपत्र, इलायचीके साथ जसद त्रिदोषका नाश करता है ॥१२०॥

अग्निमंथरसैर्हंति वह्निमांद्यं दुरासदम् ॥ नेत्ररोगं गवाज्येन जीर्णेनैवांजने कृते ॥२१॥ अथवा लालया प्रातर्नेत्ररोगं हि व्युष्टया ॥ अहिवल्लिदलोत्पन्नवीटकेन प्रमेहनुत् ॥ २२ ॥

टीका–अग्निमांद्यमें, अरनीके रसमें, नेत्ररोगमें जीर्ण गोघृतसे अंजन करे अथवा वासी थूकसे अंजन करे. प्रमेहमें पानके बीड़ासाथ खावे ॥ २१ ॥ २२ ॥

सतंडुलहिमैर्हंति खर्जूरैर्मायुजज्वरम् ॥ यवानिकालवंगाभ्यां युतं शीतज्वरं जयेत् ॥ २३ ॥

टीका–पित्तज्वरमें चावलका हिम और खजूरमें, शीतज्वरमें अजमायन, लवंग साथ सेवन करे तो रोग जाता है ॥ २३ ॥

खर्जूरतंडुलहिमै रक्तातीसारनाशकृत् ॥ शर्कराजाजिसंयुक्तमतीसारं वमिं जयेत् ॥ २४ ॥

टीका–खजूर और चावलके हिमसे रक्तातिसार

जावे. अतिसार और वांतिमें जीरा शकर साथ देना ॥ २४ ॥

यवानिकालवंगजीरकैः सशर्करैः शिवायुधाख्यमामयं निहन्ति वामलोचने प्रिये॥ यवानिकाकवोष्णनीरसंयुतं विबंधनुत्तथामवातनुद्यवानिकालवंगसंयुतम् ॥२५॥

टीका–शूलरोगमें आजमायन, लवंग, जीरा, शकरसंग, विबंधरोगमें अजमायन और थोड़ा गरम जलसंग, आमवातमें अजमायन लवंगसंग देना ॥२५॥

महिषीनवनीतेन प्रमेहं जयति ध्रुवम्॥वर्ज्यं पथ्ये च गोधूमकर्पटी घृतसंयुता॥२६॥

टीका–प्रमेहमें भैंसके माखनसंग तीन रात्रि सेवन करे. पथ्यमें फकत गेहूं भौंरिया जिसको अंगकडी और वाटी भी कहते हैं सो घृतयुक्त खावे ॥ २६ ॥

यवानिकालवंगाभ्यामजीर्णं
कोष्णनीरयुक् ॥ मधुपिप्पलि-
संयुक्तं कांस जयति सत्वरम् ॥२७॥

टीका–अजीर्णमें अजमायन, लवंग और गरम जल संग, कासमें मधु पिप्पलीसंग ले तो शीघ्र कास जावे ॥ २७ ॥

अथ लोहविधिः ॥ तत्र लोहपरीक्षा ॥ वामोरु त्रिविधं लोहं प्रवदंति भिषग्वराः ॥ कांतं तीक्ष्णं तथा मुंडं दिव्यमध्याधमं क्रमात् ॥ २८ ॥

टीका—अथ लोहविधिः—तत्र परीक्षा—लोह तीन प्रकारका है. कांत, तीक्ष्ण, मुंड, क्रमसे दिव्य, मध्य, अधम है ॥ २८ ॥

कांतं श्रेष्ठतमं ग्राह्यं कांताभावे तु तीक्ष्णकम् ॥ मुंडकं सर्वथा त्याज्यं यतो दोषा हि मुंडके ॥ २९ ॥

टीका—सर्वमें कांत श्रेष्ठ है. कांत न मिले तो तीक्ष्ण, और मुंडक दोषयुक्त है इसवास्ते सर्वथा त्याग करना ॥ २९ ॥

चतुर्धा कांतमप्याहू रोमकं भ्राजकं प्रिये ॥ चुंबकं द्रावकं तेषां गुणा ज्ञेया यथोत्तरम् ॥१३० ॥

टीका—कांत भी चार प्रकारका है. रोमक, भ्राजक, चुंबक, द्रावक यथोत्तर एकसे एक श्रेष्ठ है ॥१३०॥

ताम्रवच्छोधयेल्लोहं विशेषात्त्रैफले

जले ॥ त्रयोदशपलान्नोर्ध्वं तथा पंचपलादधः ॥ ३१ ॥

टीका–लोहकी शुद्धि ताम्रवत् है. विशेष त्रिफलामें सात वेर बुझाना तेरह पलसे ज्यादा न करना. पांच पलसे नीचा न करना ॥ ३१ ॥

अथ मारणम् ॥ मृदुमध्यखरैर्भेदैर्लोहपाकस्त्रिधा मतः ॥ शुष्कपंकसमौ पूर्वौ सिकतासदृशः खरः ॥ ३२ ॥

टीका–अथ मारण. मृदु, मध्य और खर भेद करके लोहपाक तीन प्रकारका है. सूखा कीच सरीखा मृदु और मध्य है. बालू रेतसरीखा खर है ॥ ३२ ॥

गंधलिप्तमयःपत्रं वह्नौ तप्तं पुनः पुनः ॥ मीनाक्षिस्वरसे क्षिप्त्वा यावत्तन्नो विशीर्यते ॥ ३३ ॥ ततः पारदगंधेन तुल्यांशं मर्दयेद्धि तत् ॥ मीनाक्षिवृषनिर्गुंडीरसैर्गजपुटान्मृतिः ॥ ३४ ॥

टीका–गंधक खटाईसे लेपन करके अग्निमें तप्त करके मछलीके रसमें बुझाता जावे. जहां तक पत्र फुटै नहीं. फिर पत्रके समभाग पारा गंधक मिला मछली और निर्गुंडीके रसमें घोट गजपुट दे तो लोह मरे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथान्यःप्रकारः ॥ अयश्चूर्णं वराक्वाथे कृत्वा गोलं पुनःपुनः ॥ गर्ते निर्वातके देशे षोडशांगुलसंमिते ॥ ३५ ॥ पुटं दत्त्वा प्रयत्नेन चतुः षष्टिपुटैरयः ॥ भस्मीभूतं विशालाक्षि पद्मरागनिभं भवेत् ॥३६॥

टीका—अथ दूसरा प्रकार. शुद्ध लोहेका चूर्ण त्रिफलाके काढेमें घोटके संपुटमें रखके, सोलह अंगुल गहरे खाढेमें पुट दे ऐसे चौंसठ ६४ पुट देवे तो पद्मराग तुल्य रंग लोहभस्म होता है ॥३५॥३६॥

अथान्यः ॥ भागैकं पारदं कांते द्विभागं गंधकं शुचिम् ॥ तयोस्तुल्यमयश्चूर्णं मर्दयेमत्कन्यकाद्रवैः ॥ ३७ ॥ यामद्वयमितं पश्चात्स्थापयेत्ताम्रभाजने ॥ व्याघ्रपत्रैः समाच्छाद्य यदोष्णं प्रहरद्वयात् ३८ स्थापयेच्च ततः पश्चाद्धान्यराशौदिनत्रयम् ॥ ततः संमर्दयेद्गाढमेवं वारितरं भवेत् ॥ ३९ ॥

टीका—अथ तीसरा प्रकार—एक भाग पारा, दो भाग गंधक, तीन भाग लोहचूर्ण, घीकुमारपाठके

रसमें खरल कर ताम्रके पात्रमें रखके ऊपरसे एरंड-का पत्र ढकके तीव्र सूर्यके तापमें दो पहर रख दे जब उष्ण होवे तब अन्नकी राशिमें रख छोड़े. दिन तीनपाछे निकासि खरल करे तो पानीपर तिरेगा जब जाने कि भस्म हुआ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ सामान्यगुणाः ॥ मृगविलोचनि कुंजरगामिनि शृणु वदाम्ययि लोहगुणानहम् ॥ सुविधिमारितमेव हरत्ययः क्रमिसमीरणपांडुविषज्वरान् ॥१४०॥ भ्रमवमिश्वसनग्रहणीगदान् कफजराकसनक्षयकामलाः ॥ अरुचिपीनसपित्तप्रमेहकान् गुदजगुल्मरुगामसमीरणात् ॥ ४१ ॥

टीका—अथ साधारण गुण—हे मृगके सरीखे नेत्र वाली ! हाथीके सरीखे गमन करनेवाली, कृमिरोग, वात रोग, पांडु, विष, ज्वर, भ्रम, वांति, श्वास, संग्रहणी, कफ, जरा, कास, क्षय, कामला, अरुचि, पीनस, पित्त, प्रमेह, अर्श, गुल्म, आमवात ये जातेहैं ।१४०।४१

प्लीहस्थौल्यविनाशनं बलकरं कांताजनानंददं क्षीणत्वं विधुनोति दृष्टिजनकं शोफापहं कुष्ठनुत॥भक्तं शुद्धरसेंद्रसंयुत-

सिदं सर्वामयध्वंसनं कांताऽश्रेष्ठरसाय-
नं नहि परं कांतेऽस्ति बिंबाधारे ॥ ४२ ॥

टीका–श्लीह, स्थूलता इन रोगोंको हरे. बलको बढ़ावे, स्त्रीको सुख देवे. क्षीणता मिटावे. दृष्टि निर्मल करे. सोजा दूर करे. कुष्ठ हरे. जो शुद्ध पारे संग सेवन करे तो सर्व रोग जावें. हे बिंबफलसमान अधरवाली प्रिये ! लोहसे श्रेष्ठ और रसायन नहीं है ॥४२॥

अथापक्वदोषाः ॥ विषं क्लेदं करोत्येवं
वीर्यं कांतिं निहंति च ॥ अपक्वं हि यतो
लोहं ततः सम्यग्विपाचयेत् ॥ ४३ ॥

टीका–अथापक्वदोष–अपक्व लोह विष और जीमैलाना पैदा करे. वीर्य और कांतिको नाश करे इसवास्ते शुद्ध भस्म लेवे ॥ ४३ ॥

अथ शांतिः ॥ खंडमाक्षिकसंयुक्तमेला-
चूर्णं दिनत्रयम् ॥ विकारो लोहजस्त-
स्य भुक्त्वा नाशं समाप्नुयात् ॥ ४४ ॥

टीका–अथ लोहविकारशांतिः–खांड और मधु साथ इलायचीचूर्ण तीन दिन सेवन करे तो लोह विकार जावे ॥ ४४ ॥

अथान्यः ॥ सिंधूत्थं त्रिवृताचूर्णं सेवि-

तं कोष्णवारिणा ॥ लोहजा विकृति-स्तस्य विनश्यति न संशयः ॥ ४५ ॥

टीका—अथ अन्यप्रकार सैंधव लवण और निशोत्तर चूर्ण गरम जलसे पिये तो लोहविकार जावे॥४५॥

अन्यच्च ॥ सितया मधुना वापि श्वेत-दुर्वारसं पिबेत् ॥ विकारं लोहजं त्यक्त्वा सुखमेव हि जीवति ॥ ४६ ॥

टीका—अथवा दूर्वारस शकर वा मधुसंग पीवे तो लोहविकार जावे और सुखसे जीयेगा ॥ ४६ ॥

अथ लोहयोनिरक्षामंत्रः ॥ ॐ मृतोद्भवाय फट् ॥ अथ लोहमर्दनमंत्रः ॥ ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा ॥ अथ बलिदानमंत्रः ॥ ॐ नमश्चंडवज्रपाणये महायक्षसेनाधिपतये कुरु कुरु महाविद्याविलाय स्वाहा ॥ अथ भक्षणमंत्रः ॐ अमृतं भक्षयामि स्वाहा ॥ इति मंत्राः ॥ अथानुपानम् ॥ रसराज-युतं लोहं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ भार्ङ्गी त्रिकटुकक्षौद्रयुतं धातुविकारनुत् ॥४७॥

टीका—अथ लोहयोनिरक्षामंत्रः-ओं अमृतोद्भवाय फट् । अथ लोहमर्दनमंत्रः-ओं अमृतोद्भवाय स्वाहा

अथ बलिदानमंत्रः—ओं नमश्चंडवज्रपाणये महाक्षय-सेनाधिपतये कुरु कुरु महाविद्याविलाय स्वाहा। अथ भक्षणमंत्रः—अमृतं भक्षयामि स्वाहा। इति मंत्राः। अथानुपानम्—सर्व रोगमें लोहभस्म पारासंग देना, धातुविकारमें भारंगकी मूल, शुंठी, मिरच, पिपरी, मधुसंग देना॥ ४७॥

रसगंधयुतं लोहं माक्षिकेण कफप्रणुत्॥ चातुर्जातसितासार्धं रक्तपित्तं जयेत्सुधीः॥ ४८॥

टीका—कफरोगमें पारा, गंधक, मधुसंग रक्तपित्तमें तज, पत्रज, इलायची, नागकेशर, शकरसंग देना४८

पुनर्भूरजसा युक्तं गोदुग्धेन बलप्रदम्॥ क्वाथे पौनर्नवे पांडुं खंडयेल्लोहमेव हि ४९.

टीका—बलवृद्धिके वास्ते पुनर्नवाके चूर्ण और गौके दूधसंग पांडुरोगमें पुनर्नवाके काढेमें देना॥४९॥

निशामधुयुतं वापि पिप्पलीमाक्षिकान्वितम्॥ प्रमेहान्विविधान्हंति सशिलाजतु कृच्छ्रकान्॥ १५०॥

टीका—प्रमेहमें हलदी औरर मधुसंग वा मधुपिप्पलीसंग, मूत्रकृच्छ्रमें शिलाजीत संग देना॥१५०॥

वृषायःपिप्पलीद्राक्षामाक्षिकैर्वटिका कृता ॥ जयेत्पंचविधं कासमायासमिव चक्रधृक् ॥ ५१ ॥

टीका–पंचविध कासरोगमें अरूसा, लोह, द्राक्ष पिप्पली, मधु इनकी गोली बनाके देना ॥ ५१

धातुकांतिप्रदं चेत्थं तांबूलेनाग्निदीपनम् ॥ देहं लोहसमं कुर्यात् सेवनाद्विधिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥

टीका–तांबूलके (पान) डाले लेनेसे धातु कांती और जठराग्नि वढ़ती है. जो विधिपूर्वक सेव करे तो देह लोहसरीखी होवे ॥ ५२ ॥

अथ मंडूरम् ॥ ये गुणा लोहके प्रोक्तास्ते गुणा लोहकिट्टके ॥ अक्षकाष्ठेन संतप्तं गोमूत्रे वारसप्तकम् ॥ ५३ ॥

टीका–अथ मंडूरविधि–जो गुण लोहमें हैं सो लोहकीटमेंभी हैं. लोहका कीट बहेड़ेकी लकड़ीकी अग्निमें तपाके गोमूत्रमें सात बेर बुझावै. ॥ ५३ ॥

निर्वाप्य चूर्णयेत्पश्चान्मर्दयेत्सुरभीजलैः ॥ एकं गजपुटं दत्त्वा मंडूरं सर्वकार्यकृत् ॥ ५४ ॥

टीका-फिर चूर्ण करके गोमूत्रमें खरल करे सुखाय गजपुट देवे तो शुद्ध सब कार्य करनेवाला मंडूर होवे ॥ ५४ ॥

लोहवत्सर्वमाख्यातं सेवनादिकमस्य वै ॥ ताम्रवत्पित्तलं कांस्यं जानीयान्मारणादिषु ॥ ५५ ॥

टीका-इस मंडूरका गुण अवगुण शांति अनुपान लोहवत् है. कांस पीतलका मारना गुणादि अनुपान वगैरे ताम्रवत् जानना ॥ ५५ ॥

अथ धातुसेविनो वर्ज्यानि ॥ राजिकामद्यमाषान्नं तैलमम्लरसं तथा ॥ पत्रशाकं न सेवेत लोहभक्षी कदाचन ॥ ५६ ॥

टीका-अथ धातु सेवनेवालेको वर्जनीय पदार्थ राई, मदिरा, उड़दके व्यंजन, तेल, खटाई, पत्तेकी भाजी ॥ ५६ ॥

कूष्मांडं कदलीकंदं करमर्दं च कांजिकम् । कारवेल्लं करीरं च षट्ककारादिकं त्यजेत् ॥ ५७ ॥

इति श्रीपं० रघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यां प्रथमा वीचिः ॥ १ ॥

टीका—कूष्मांड जिसको कोहला और कुह
और भूरा भी कहते हैं और केलेका कंद करौंद
कांजी, करेला करील इनको न खावे ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्रमणविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणी
टीकायां नौकाख्यायां प्रथमकोष्ठकः ॥ १ ॥

अथोपधातुविधिः ॥ तत्रोपधातु-
संख्या ॥ माक्षिकं तुत्थकं तालं नी-
लांजनमथाभ्रकम् ॥ मनःशिला
च रसकं प्राहुः सप्तोपधातवः ॥ १ ॥

टीका—अथोपधातुविधिः—तत्र उपधातुसंख्य
सोनामक्खी १, नीलातूथा जिसको मोरतूथा और
तियाभी कहते हैं २, हरिताल ३, सुरमा ४, अभ्रक
मनशिला ६, खपरिया ७, ये सात हैं ॥ १ ॥

तत्रादौ हेममाक्षिकशोधनम् ॥ भाग-
त्रयं कांचनमाक्षिकस्य सिंधुत्थभागं-
कमयःकटाहे ॥ जंबीरनीरैः फलपूरजै-
र्वा नीरैर्विपाच्यं ललनेऽग्निना वै ॥ २ ॥

टीका—तहां प्रथम सोनामक्खीविधि—तत्र शोध
न.—तीन भाग सोनामक्खी, एक भाग सैंधव लव
ण, लोहकी कड़ाहीमें डालके जंभीरी वा बिजरा
रसके साथ पचावे ॥ २ ॥

यावत्कटाहं भजतेऽरुणत्वं तावद्विघट्टेदयि लोहदर्व्या ॥ पश्चात्स्वयं शीतलतामुपेतमुत्तार्य शुद्धं सुरसेषु योज्यम् ॥३॥

टीका—जबतक कड़ाह लाल न होवे तबतक लोहकी कलछीसे घोटता जावे. फिर उतार ठंढा भएपर रसक्रियामें युक्त करे ॥ ३ ॥

अथ मारणम् ॥ कुलत्थस्य कषायेण वाजमूत्रेण मर्दयेत् ॥ वा तैलेनारविंदाक्षि तक्रैर्वा स्वर्णमाक्षिकम् ॥ ४ ॥

टीका—अथ सोनामाखीमारणम्.—सोनामाखीको कुलथीके काढेमें वा बकरेके मूत्रमें वा तेलमें वा छाँछमें खरल करे ॥ ४ ॥

पश्चात्संपुटके रुद्धा पुटेद्गजपुटे हि तत् ॥ रक्तवर्णं मृतं सम्यक् सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ ५ ॥

टीका—फिर शरावसंपुटमें रखके गजपुटदेवे तो लाल भस्म होवे सो सर्वकार्यमें युक्त करना ॥५॥

अथान्यः प्रकारः ॥ भागैकं गंधकं शुद्धं चतुर्भागं सुमाक्षिकम् ॥ संमर्द्यैरंडतैलेन ततो नागपुटे पुटेत् ॥ ६ ॥

टीका—अथ दूसरी विधि—एक भाग गंधक, चारभाग शुद्ध सोनामाखी, एरंडके तेलमें मर्दन कर गजपुट देवे ॥ ६ ॥

सिंदूराभं माक्षिकस्य भसितं भवति ध्रुवम् ॥ अनेकैर्वैद्यशास्त्रज्ञैः कथितं प्रियवल्लभे ॥ ७ ॥

टीका—तो सिंदूरवर्ण माक्षिकभस्म होता है. ऐसा अनेक वैद्यशास्त्रज्ञोंने कहा है ॥ ७ ॥

अथगुणाः॥वृष्यं स्वर्यं हि चक्षुष्यं व्यवाय्यपि रसायनम् ॥ हंति वस्त्यर्तिशोफार्शोमेहकुष्ठोदरक्षयान् ॥ ८ ॥

टीका—अथ स्वर्णमाक्षिकगुण—वाजीकरण हैं. स्वर शुद्ध करता है. नेत्ररोग हरता है. स्त्रीसंगकी रुचि बढ़ाता है. रसायन हैं. वस्तिपीडा, शोफ, अर्श, प्रमेह, कुष्ठ, उदररोग, क्षय इनको हरता है ॥ ८ ॥

पांडुरोगं विषं पित्तं कामलां च हलीमकम् ॥ वातं वातात्मजः पुत्रं रावणस्य यथाऽहनत् ॥ ९ ॥

टीका—जैसे रावणके पुत्रको हनुमानजी मारते भये वैसे पांडु, विष, पित्त, कामला, हलीमक, वातरोग. इनको नाश करता है ॥ ९ ॥

अथापक्वदोषास्तच्छांतिश्च ॥ अपक्वाद्विविधा रोगा भवंति स्वर्णमाक्षिकात् ॥ कुलत्थस्य कषायं वा तच्छांत्यै दाडिमत्वचम् ॥ १० ॥

टीका–अथ अपक्व दोष और शांति कहते हैं अधपक्की सोनामाखीसे नानाप्रकारके रोग होते हैं. वे रोग कुलथीके काढ़ा पीनेसे वा दाड़िमके छालसें शांत होते हैं ॥ १० ॥

अथानुपानम् ॥ मधुपिप्पलिसंयुक्तं क्षयश्वासभ्रमादिकान् ॥ हंति रोगचयं विष्णुर्यथा चक्रधरोऽसुरान् ॥ ११ ॥

टीका–अथानुपान–मधु पिप्पलीसंग लेनेसे पहिले कहे हुए रोगोंको हरता है, जैसे चक्र धारण करके विष्णु असुरोंके ॥ ११ ॥

अथ रौप्यमाक्षिकविधिः ॥ कर्कोटीस्वरसैर्वापि मेषशृंगीरसेन वा॥जंभीरस्य रसैर्वापि भावयेदातपे खरे ॥ १२ ॥ विमला शुद्धिमायाति शुद्धचित्ते न संशयः ॥ स्वर्णमाक्षिकवत्सर्वं मारणादिकमस्य वै १३

टीका–अथ रूपामक्खीविधिः–ककोड़ाके रसमें वा मेढ़ासींगीके रसमें वा जंभीरीके रसमें घोटके ती-

क्षण सूर्यतापमें रखनेसे शुद्ध होता है. मारण गुण अनुपान सोनामाखी तुल्य जानना ॥ १२ ॥१३॥

अथ तुत्थकविधिः ॥ तुत्थं कपोतौतु पुरीषसार्द्धं दत्त्वा ततष्टंकणकं दशांशम् ॥ पाच्यं ततः कौक्कुटके पुटे तद्दध्ना पुनर्वै मधुना मृतं स्यात् ॥१४॥

टीका–अथ मोरतुत्थविधि–नीलाथोथाको कबूतर और बिल्लीको विष्ठा समान मिलाके दशांश टंकणसंयुक्त एक वितस्ति गहिरे खाड़ेमें पुट दे फिर एकपुट दहीकी और एकपुट मधुकी दे तो शुद्ध भस्म होता है ॥ १४ ॥

अन्यच्च ॥ ओतोर्विष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टंकणांघ्रियुक् ॥ त्रिधैवं पुटितं शुद्धं वांतिभ्रांतिविवर्जितम् ॥ १५ ॥

टीका–अथवा बिल्लीके विष्ठाकी समान तूतिया और तूतियासे चौथा भाग सोहागा मिलाके सहतमें खरल करके पुट देवे. ऐसे तीन पुटमें वांति भ्रन्ति रहित होता है ॥ १५ ॥

इति शोधनमारणे ॥ अथ गुणदोषौ ॥ तुत्थ भस्म कफं हंति पामां कु-

ष्ठं विषं कृमीन् ॥ चक्षुष्यं लेखनं भेदि शुद्धिहीनं हि दोषकृत ॥ १६ ॥

टीका–अथ गुण और दोष–तुत्थभस्म कफनाशक है. कंडू, कुष्ठ, विष, कृमि हरता है. नेत्ररोग हरता है. फूली वगैरे काटता है. मलको फोड़ता है. और अशुद्ध रोगकारक है ॥ १६ ॥

अथ शांतिः ॥ जंबीरस्वरसं वापि लाजा वारिसमन्विताः ॥ लामज्जकजलं वापि पिबेत्तुत्थकशांतये ॥ १७ ॥

टीका–अथ तुत्थविकारशांति–जंभीरीका रस वा चावलकी खीलें जिनको कुरमुरा और धानी और लाई भी कहते हैं तिन्है जलसंग सेवन करै वा खस जिसको वाला भी कहते है तिसका अर्क पिये तो तुत्थविकार शांत हो ॥ १७ ॥

अथानुपानम् ॥ नवनीतयुतं कंडूविषकुष्ठनिवारणम् ॥ कृमिरोगं विडंगेन तांबूलेन कफं जयेत् ॥ १८ ॥

टीका–अथ अनुपान–माखनसंग खाज, विष कुष्ठनिवारण करता है. वायविड़ंगमें कृमिनाशक है. पानमें कफ हरता है ॥ १८ ॥

माक्षिकेणांजितं हंति चक्षूरोगं सुदारुणम्।
एरंडतेलसंयुक्तं भेदयेदिदमेव हि ॥ १९ ॥

टीका-मधुसंग अंजन करनेसे नेत्ररोग रहता है. एरंडके तेलसंग रेचन है ॥ १९ ॥

अथ हरितालविधिः ॥ तत्र शोधनम् ॥
तालकं त्रिफलाक्वाथे स्वेदयेत्कांजिके तथा ॥ कूष्मांडस्वरसे तैले यामं यामं पृथक्तु वा ॥ दोलायंत्रे सुधानीरे शुद्धं स्यात्सर्वकार्यकृत् ॥ २० ॥

टीका-अथ हरितालविधिः-तत्र शोधन-हरतालको त्रिफलाके काढेमें और कांजीमें और भूरा कुम्हड़ाके रसमें, तेलमें न्यारी न्यारी पहरकी आंच दोला यंत्रसे देना. अथवा चूनाके जलमें पहर चार दोलायंत्रमें स्वेदन करना तो शुद्ध सर्व कार्ययोग्य होता है

अथ मारणम्॥अश्वत्थस्वरसैस्तालं मर्दयेद्दिनविंशकम्॥गोलकंतु ततः कृत्वा शोषयेदातपे दृढम्।२१।पश्चाद्भांडेऽश्वत्थभूतिं पूरयेदर्द्धके दृढाम्॥शनैर्गोलं निधायाथ ततो भूतिं प्रपूरयेत्।२२।संयंत्र्य मुद्रयेत्पश्चाच्चुल्ल्यांसंस्थाप्य दीपयेत्।चतुर्यामावधिं वह्निं स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥२३॥

टीका–अथ मारण–पीपरके रसमें वीस दिन हरिताल खरल करके गोला बनाके धूपमें खूब सुखाले ॥ २१ ॥ फिर एक हंडीमें पीपरकी भस्म आधी भरे खूब दबाके तिसपर गोला धरके ऊपर वही भस्म फिर दबाके भरे और हंडीको मुद्रा देके चूल्हेपर चढ़ाय चार पहर आंच दे शीतल भये भस्म युक्तिसे निकाले ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्यः प्रकारः ॥ तालं पुनर्नवानीरैः पुटेदेकदिनं प्रिये॥कृत्वा तद्गोलकं पश्चाच्छोषयेदातपे सुधीः ॥ २४ ॥

टीका–दूसरी विधि–हरितालको पुनर्नवाके रसमें एक दिन खरल करके गोला बनाकर सुखावे ॥२४॥

तद्भूत्यार्धभृते भांडे गोलकं न्यस्य पूरयेत् ॥ वर्षाभूभस्मना मुद्रां विदध्याच्चापि शोषयेत् ॥ २५ ॥

टीका–फिर पुनर्नवाकी भस्म आधी हंडीमें भरके ऊपरसे गोला रखके फिर भस्म दबाके भरके मुद्रा देके सुखा देना ॥ २५ ॥

चुल्ल्यां खवेदयामांतमग्निदानात्सुनिश्चितम् ॥ भवेद्भूतिस्तु गुंजैका भक्षिता रुग्विनाशिनी ॥ २६ ॥

टीका–चूल्हेपर चढ़ाके चालीस ४० पहरकी आंचसे भस्म होता है. एक रती खानेसे सर्व रोग नाश होते हैं ॥ २६ ॥

अथान्यः ॥ द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं तालकं न्यस्य यंत्रके ॥ ऊर्ध्वपातनके दत्त्वा वह्नि यामचतुष्टयम् ॥२७॥ स्वांगशीतं तमुद्घाट्य चोर्ध्वलग्नं हि तालकम् ॥ गृहीत्वा भावयेत्पश्चात्पूर्ववत्पाचयेत्ततः ।२८। त्रिःसप्तपुटकैरेवं तालभूतिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ एवं हि कन्यकाद्रावैः शतकृत्वो विपाचयेत् २९

टीका–अथ तीसरी विधि–गूमाके रसमें हरिताल घोटके डमरूयंत्रमें आंच देवे. ठंढे हुए पीछे ऊपरकी हांडीमें लागा छुड़ाके फिर घोटके आंच देवे. ऐसे एकईस २१ आंचमें भस्म होता है. ऐसे ही कुमारीपाठेके रसमें सौ १०० आचसे भस्म होता है २७।२८।२९

अथ गुणाः ॥ हंति वातामयान् सर्वान् कफपित्तगुदामयान् ॥ हरितालं मृतं कुष्ठं प्रमेहं वै ज्वरादिकान् ॥ ३० ॥

टीका–अथ हरितालगुण–संपूर्ण वातरोग, कफरोग, पित्तरोग, गुदाके रोग, कुष्ठ, प्रमेह, और ज्वरादिक सब हरता है ॥ ३० ॥

अथाशुद्धदोषाः ॥ अशुद्धं पीतवर्णं यन्मृतं तालं स धूमकम् ॥ वातपित्तामयान्कुष्ठं देहनाशं करोति च ॥ ३१ ॥

टीका—अथ अशुद्ध दोष—जो हरिताल अशुद्ध और पीला और अग्निपर डालनेसे धूवां देवे सो वात, पित्त और कुष्ठादिक रोगकारक और देहनाशक भी है

अथ शांतिः ॥ कूष्मांडस्वरसं वापि यवासां च निषेवयेत् ॥ नाकुलीस्वरसं वापि सितायुक्तं वरांगने ॥ ३२ ॥

टीक—अथ शांतिः—सफेद कुहडेका रस वा यवासा वा कडुविनाइकाका रस शकरयुक्त सेवै ॥३२॥

ससितं जीरकं बाले यः खादेद्दिनसप्तकम् ॥ हरितालविकारेण मुक्तः स्यात्सुखसंयुतः ॥ ३३ ॥

टीका—जीरा शकर सात दिन सेवन करे तो हरितालविकार मिटे और सुखसे युक्त होवे ॥ ३३ ॥

अथानुपानानि ॥ तालं छिन्नारजोयुक्तं तत्काथेन युतं तु वा ॥ वातास्रं कुष्ठकं हंति चक्रपाणिर्यथाऽसुरान् ॥ ३४ ॥

टीका—अथ अनुपान—हरितालको गिलोइके

चूरणमें वा काढ़ेमें ले तो जैसा श्रीकृष्ण दैत्योंको मारताहै वैसा वातरक्त और कुष्ठरोग जाता है ॥ ३४ ॥

रक्तदोषं निशायुक्तं तांबूलेन क्षयं जयेत् ॥ तद्वज्जलोदरातंकं हंति सिंधुफलान्वितम् ॥ ३५ ॥

टीका—हलदीमें रक्तदोष, तांबूलमें क्षयरोग, समुद्रफलमें जलोदरका नाश करता है ॥ ३५ ॥

कूष्मांडस्वरसैः कंडूमुपदंशं भगंदरम् ॥ विसर्पं मंडलं वातरक्तं विस्फोटकं जयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—भूरे कुम्हड़ाके रसमें खुजली, और उपदंश, भगंदर, विसर्प, मंडल, कुष्ठ, वातरक्त, विस्फोटक हरता है ॥ ३६ ॥

पांडुक्षयज्वरान्हंति हरितालं सितायुतम् ॥ भुक्त्वैतत्पथ्यमश्नीत गोदुग्धांधःसितायुतम् ॥ ३७ ॥ अंधः ओदनम् ॥

टीका—हरिताल शक्करसंग खानेसे पांडु, क्षय, ज्वर नाश करता है, परंतु पथ्य गाईका दूध और शक्करसंग भात खावे ॥ ३७ ॥

अल्पाहारं प्रकुर्वीत नीरमल्पं प्रिये

पिवेत् ॥ सदुग्धां लप्सिकां पीत्वा भक्षयेच्च सितोपलाम् ॥ ३८ ॥

टीका–और अल्प आहार करै. जल थोड़ा पीवे और दूधसंग लपसी पीवे. मिश्री खावे ॥ ३८ ॥

सायंतनाशने खादेत्कृसरां लवणं विना ॥ वर्जयेत्प्रमदासंगं स्वपेद्धन्वंतरिं स्मरन् ॥ ३९ ॥

टीका–संध्याको अलोनी खिचड़ी खावे.स्त्रीसंभोग त्यागे. और धन्वंतरिका स्मरण करते करते सोवे.

शृंगवेरांबुना वातं शूलं सूतिगदं जयेत् ॥ घृताक्तकृसरां खादेत्पथ्ये दुग्धौदनं तु वा ॥ ४० ॥

टीका–वातरोग शूल सूतिकारोगमें अदरखके रसमें लेवे. अदरखको आदाभी कहते हैं. पथ्यमे घी खिचड़ी वा दूधभात भी खातारहै ॥ ४० ॥

भेषजादनमारभ्य मुहूर्तद्वितयावधि ॥ पानीयं न पिवेद्धाले पिपासुरपि रोगवान् ॥ ४१ ॥

टीका–जिस समय औषध खाय तबसे दो मुहूर्त रोगी प्यासा हो तो भी पानी न पीवे ॥ ४१ ॥

श्रृतशीतांबुना तालमशक्तः पुरुषः पिबेत् ॥ सन्निपातं वातगुल्मं वायुमर्धांगकं जयेत् ॥ ४२ ॥

टीका—अशक्त पुरुष शक्तिप्राप्तिके वास्ते दूध गरम कर ठंढा करके उसमें लेवे और इसी अनुपानसे सन्निपात, वातगुल्म, वातरोग, अर्धांग इनमें देवे ४२॥

निर्बलो बलसंप्राप्त्यै जातीफलसमन्वितम् ॥ रक्तपित्ते निशासार्धं वीर्यस्तंभाय पर्णयुक् ॥ ४३ ॥

टीका—बलप्राप्तिके वास्ते जायफलमें देवे, रक्तपित्तमे हलदीसंग, वीर्यस्तंभनको पानमें दे ॥ ४३ ॥

ऊर्ध्वश्वासं शिवायुक्तं शुंठ्यालस्यं जयेत्सुधीः ॥ त्रिसुगंधान्वितं तालमास्यदौर्गंध्यनाशनम् ॥ ४४ ॥

टीका—ऊर्ध्वश्वासमें हरड़युक्त, आलस्यमें सोंठसंग, मुखदुर्गंध जानेको तजपत्र इलायचीमें देना ४४

जलोदरमजामूत्रैः प्रमेहं स्वरसारसैः ॥ जातिपत्रीकुंकुमाभ्यां प्रतिश्यायं निवारयेत् ॥ ४५ ॥

टीका—जलोदरमें बकरीके मूत्रसंग, प्रमेहमें तुल-

सीके रससंग, जायपत्री केसरसंग प्रतिश्यायमें, जिसको जुकाम और सरदी भी कहते हैं ॥ ४५ ॥

अग्निमांद्यं जयेत्कांते पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ कासं क्षयं सितायुक्तं नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ ४६ ॥

टीका-मंदाग्निमें मधु, पिप्पलीसंग, कास, क्षय, विषमज्वरमें शक्करसंग देना ॥ ४६ ॥

लवंगतजकर्पूरैर्वीर्यस्तंभाय तालकम् ॥ सेवेत गोक्षीरयुतं वीर्यवृद्ध्यै घटस्तनि ॥ ४७ ॥

टीका-फिर वीर्यस्तंभके वास्ते लवंग, तज, कर्पूरसंग, वीर्यवृद्धिके वास्ते गौके दुग्धसंग ॥ ४७ ॥

अथ नीलांजनविधिः ॥ जंबीरस्यांबुना भाव्यं नीलांजनमथातपे ॥ शोषयेच्च दिनैकेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ४८ ॥

टीका-अथ नीलांजनविधि-सुरमाको जंभीरीके रसकी पुट देके एकदिन धूपमें सुखा ले तो शुद्ध होता है ॥ ४८ ॥

अथान्यः॥सौवीरं कांजिके स्विन्नं यामैकेन विशुद्ध्यति॥अथ गुणाः ॥ सौवीरं शीत-

लं ग्राहि चक्षुष्यं मधुरं स्मृतम्॥सिध्मानक्षयपित्तास्रकर्फ हंति विशेषतः ॥ ४९ ॥

टीका—अथ दूसरी विधि—सुरमा एक पहर कांजीमें दोलायंत्रमें पचावे तो शुद्ध हो—अथ गुण—सुरमा शीतल है. ग्राही है.नेत्र निरोग करता है. मीठा.है.सेहुवां, क्षय, पित्त, रक्त, कफ इनको मारता है ॥ ४९ ॥

नीलांजनमतीसारं ग्रहणीमपि नाशयेत् ॥ काश्मीरनागफेनाभ्यामरविंदविलोचने ॥ ५० ॥

टीका—और केशर अफीमसंग, संग्रहणी अतीसारको भी दूर करता है ॥ ५० ॥

समं वै पारदं नागं द्वयोस्तुल्यमयेऽजनम् ॥ शुद्धकर्पूरकं बाले पारदात्पंचमांशकम् ॥ ५१ ॥ विमर्द्य खल्वके सम्यगंजयेन्नेत्रयुग्मके ॥ नेत्रदोषविमुक्तः सन् सुखं सौंदर्यमाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

टीका—पारा सीसा समभाग, दोनोंके सम सुरमा, पारासे पंचमांश शुद्ध कर्पूर, सबको खरल करके अंजन करे तो नेत्ररोग जावे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

सौवीरं सैन्धवं कुष्ठं बीजान्येडगज-

स्य च ॥ विडंगं सर्षपान्पिष्ट्वा कांजिकेन प्रलेपयेत् ॥ सिध्मानं मंडलं कुष्ठं दद्रुमेव जयेत्क्षणात् ॥५३॥

टीका–सुरमा, सैंधव लवण, कूट जिसको उपलेट भी कहते हैं. पमाड़के बीज, वायविड़ंग, सरसों, कांजीमें पीसके लगावे तो सेहुवाँ, मंडल, कुष्ठ, दाद इनको नाश करै ॥ ५३ ॥

शर्कराज्ययुतं पित्ते कफे शुंठ्यभयागुडैः ॥ ५४ ॥

टीका–पित्तरोगमें घी शकरसंग, कफरोगमें हरड़, गुड़, सोंठसंग ॥ ५४ ॥

नीलांजनं कनकजं वरखं विशुद्धं हैयंगवेन ससितामधुनैकगुंजम् ॥ खादेन्नरः क्षयनिपीडित आशु कांते कांतिं लभेत् विपुलं वलमंबुजाक्षि ॥५५॥

टीका–शुद्ध सुरमा सोनेका वर्क दोनोंको एकत्र कर माखनमिश्री सहतसंग एक रत्ती खावे तो हे कमलनयने! क्षयरोग जावे और बहुत बल होगा५५॥

अथाभ्रकविधिः ॥ तत्तु चतुर्विधम्। श्वेतं कृष्णं तथा पीतं धूम्रवर्णं

क्रमात्प्रिये ॥ ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं प्राहुर्भिषग्वराः ॥ ५६ ॥

टीका—अथ अभ्रकविधि. सो अभ्रक चार प्रकारका है. श्वेत, कृष्ण, पीत, धूम्र. श्वेत ब्राह्मण, कृष्ण, क्षत्रिय, पीत वैश्य, धूम्रवर्ण शूद्र है ॥ ५६ ॥

कृष्णे हेमगुणान्प्राहुः श्वेते रौप्यगुणानपि ॥ पीते ताम्रारवंगादिगुणान् धूम्रं निरर्थकम् ॥ ५७ ॥

टीका—कृष्णमें सोनेके गुण हैं. श्वेतमें रूपेके गुण हैं. पीतमें ताम्र, पित्तल वंगादिकेगुणहैं. धूम्र निरर्थकहै ५७

अन्यच्च ॥ नागं भेकं पिनाकाख्यं वज्रमभ्रं चतुर्विधम् ॥ नागमग्नौ सुसंतप्तं फूत्कारं कुरुते भृशम् ॥ ५८ ॥ भेकाह्वं दार्दुरं शब्दं पिनाकं दलविस्तृतिम् ॥ वज्रमेव वरं तेषां विकारं न यतो व्रजेत् ॥ ५९ ॥

टीका—औरभी भेद हैं. नाग १, भेद २, पिनाक ३, वज्र ४, ए चारभेद हैं. नागजातिका अभ्रक अग्निमें तपाया फूंकार करता है. भेक मेंडकका शब्द करता है. पिनाकके वरख फैलते हैं. वज्र ज्योंका त्यों रहता है, श्रेष्ठ है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

गृह्णीयाच्च ततो वज्रं जराव्याधिवि-
नाशनम् ॥ कफवातकरं चाभ्रम-
शुद्धं मृत्युदं स्मृतम् ॥ ६० ॥

टीका—इसवास्ते वज्रही ग्रहण करना. जो जराव्याधिका टालनेवाला है. जो अशुद्ध है सो कफवातका करनेवाला है और मृत्युकारक है ॥ ६० ॥

तस्माद्विशोधनं वक्ष्ये विशेषामय-
नाशनम् ॥ गगनं वह्निसंतप्तं गवां
क्षीरे विनिक्षिपेत् ॥ ६१ ॥

टीका—इसवास्ते शोधन कहते हैं. जो विशेषकरके रोगनाशक है. अभ्रक अग्निमें तपाके गोके दूधमें बुझा लेना ॥ ६१ ॥

भिन्नपत्रं ततः कुर्यात्तंडुलीयाम्लयोर्द्रवैः
भावयेदष्टयामांतमेवमभ्रं विशुद्ध्यति ६२

टीका—फिर जुदे जुदे पत्रकरके तांदुलिया जिसको चौलाई भी कहते हैं. और खटाईके रसमें आठ पहर भिजाय रखना तो शुद्ध होता है ॥ ६२ ॥

पश्चात्कांजिकसंपिष्टं कंबले व्रीहि-
संयुतम् ॥ वध्वा संमर्दयेद्गाढं मृद्भां-
डे कांजिकान्विते ॥ ६३ ॥

टीका-फिर कांजीमें पीसके चतुर्थांश ब्रीहिसंयुक्त कंबलमें बांधके एक वासनमें कांजी भरके उसमें खूब मर्दन करना ॥ ६३ ॥

मर्दनाद्यद्गलेत्पात्रे धान्याभ्रं तं विदुर्बुधाः ॥ अथवा बदरक्वाथे निक्षिप्तं वह्नितापितम् ॥ मर्दितं सुदृढं शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥ ६४ ॥

टीका-जो मर्दन करनेसे पात्रमें कंबलके छिद्रोंमें होके गिरता है उसको धान्याभ्र कहते हैं. अथवा अग्निमें तपाकरके बदरके क्वाथमें बुझावे तो धान्याभ्रसे भी उत्तम होता है ॥ ६४ ॥

अथ मारणम् ॥ अर्कक्षीरेण संपिष्टमभ्रकं गोलकीकृतम् ॥ संवेष्ट्यार्कदलैः पश्चात्संपुटेत्संनिरोधितम् ॥ ६५ ॥ पुटेद्गजपुटेनैवं सप्तवारं प्रयत्नतः ॥ कपर्दिनो जटाक्वाथैरेवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ रक्तवर्णं भवेदभ्रं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ ६६ ॥

टीका-अथ मारण-अभ्रकको आकके दूधमें खरल करके गोला बनावे. फिर आकके पत्र ऊपर लपेटके संपुट करे ॥ ६५ ॥ फिर गजपुट दे. ऐसे

सात पुट दे. फिर तीन पुट वड़की जटाके काढ़ेकी दे तो लाल अभ्रक होता है. सो सर्व कार्यमें लेना ॥६६

अथान्यः प्रकारः ॥ मुस्ताशुंठ्योः पृथग्भागं षड्भागं शुद्धमभ्रकम्॥कांजिकाग्निरसैर्घस्रं मर्दितं पुटितं पुनः ॥ ६७ ॥

टीका–दूसरा प्रकार–नागरमोथा और सोंठका एक एक भाग छे भाग शुद्ध अभ्रकको कांजी और अरनीके रसमें मर्दन करके पुट देना ॥ ६७ ॥

मर्दयेत्त्रिफलाक्वाथेनैवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ बलानीरैश्च गोमूत्रैर्मुशलीशूरणद्रवैः ॥ ६८ ॥

टीका–और तीन गजपुट त्रिलाके काढ़ेमें देना. और पारा जिसको चिकनाभी कहते हैं. उसके बीजको बलबीज कहते हैं. उसके रसमें और गोमूत्रमें, मुसलीके रसमें, शूरणके रसमें ॥ ६८ ॥

स्वरसास्वरसै रम्ये पृथग्दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ गगनं सुमृतं रक्तं शुभ्रं रम्यमिदं भवेत् ॥ ६९ ॥

टीका–तुलसीके रसमें इनमें तीन पुट जुदे जुदे दे तो यह अभ्रक रक्तवर्ण सफेद होता है ॥६९॥

अथान्यः प्रकारः॥वज्रीक्षीरैरर्कदुग्धैर्धेनुमूत्रैर्बलाजलैः ॥ ब्राह्मीरुदंतीस्वरसैर्वासाग्निशाल्मलीद्रवैः ॥ ७० ॥ कूष्मांडस्वरसैरेवं दाडिमीसलिलैस्तथा ॥ वराक्काथेन गोजिह्वासलिलैरमृताद्रवैः ॥ ७१ ॥ जातीगोक्षुरमेघानां कषायैर्बर्बरीद्रवैः ॥ शंखपुष्पीरसैर्द्राक्षारसैर्मूलकजै रसैः ७२॥ राक्षसीतुलसीमुंडीविशालासलिलैरपि । विदारीलतिकाभृंगीमदाक्काथैः पृथक् पृथक् ॥ ७३ ॥ सेतिकातपनक्काथैरुग्रगंधशृतैरपि ॥ सप्तकृत्वो विशालाक्षि पाचयेदभ्रकं ततः ॥ ७४ ॥

टीका–तीसरा प्रकार–सेहुँड़ थूहरके दूधमें १, आंकड़ेके दूधमें २, गोमूत्रमें ३, बरियारीके रसमें ४, ब्राह्मी ५, रुदंती ६, अरूसा ७, चित्रक ८, सेमर ९, भूरा कोंहला १०, दाड़िम ११, इनके रसमें त्रिफलाके काढ़ेमें १२, गोभीके रसमें १३, गिलोयके रसमें १४, जाई १५, गोखरू १६, नागरमोथा १७, इनके काढ़ेमें बबईके रसमें १८ शंखाहूली १९, द्राक्षा २० मूली २१, बबई जिसके बीजको तुकम-

रिआ और लुष्मरेहां भी कहते हैं. २२, तुलसी २३, गौरखमुंडी २४, इंद्रवारुणी जिसको इंद्रायण भी और इंद्रारुण भी कहते हैं २५, इनके रसमें विदारी, कंदकी वेली २६, जलभांगरा २७, धवके फूल जिसको धाई धावडी भी कहते हैं २८, इनके काढ़ेमें सौंफ जिसको वरियाली भी कहते है २९, भिलावाँ ३०, लहसुन ३१, इनके काढ़ेमें इन एकतीसों ३, औषधोंमें न्यारा न्यारा खरल कर कर सात सात पुट दे. इतने दोसौदस पुट २१० होंगे ॥७०॥ ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

वटारोहकषायेण कुकुद्रुस्वरसैस्तथा ॥ कपित्थस्याम्लिकायाश्च फलोद्भवरसेन च ॥७५॥ पृथग्विंशपुटैरेवं पाचयेद्गगनं ततः ॥ निंबूकस्वरसैः पंचदशकृत्वो विपाचयेत् ॥७६॥ तत्संख्याकैः पुटैरेव गुडदुग्धविमिश्रितम् ॥ गवां दधियुतं तद्घृतखंडविमिश्रितम् ॥ ७७ ॥ पाचयेदभ्रकं शुद्धं रम्यं रक्ततरं भवेत् ॥ चंद्रिकारहितं शुद्धमशुद्धं स्यात्तदन्वितम् ॥ ७८ ॥

टीका-फिरि वड़की जटाके काढ़ेमें वीस पुट १

और कुकरौंधेके रसमें २ और कैथेके फलके रसमें जिसको कोठ भी कहते हैं ३ और आमलीके फलके रसमें ४ इन चारोंको वीस २० वीस पुट देवे. फिर निंबूके रसमें १ और गुड़युक्त दूधमें २ और गौके दहीमें ३ और घी शकरमें ४ इन चारोंमें पंदह १५ पुट दे तो रक्त वरण और चमकरहित शुद्ध होता है. जो चमक हो तो अशुद्ध है फिर भी पुट देना चाहिए परंतु यह तो निश्चंदही होता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७॥७८॥

पुटान्येवं सहस्राणि भिषग्बुद्ध्या प्रदापयेत् ॥ अथवा कन्यकाद्रावैः पुटेद्वारसहस्रकम् ॥ ७९ ॥

टीका—ऐसेही वैद्य अपनी बुद्धिसे हजार पुट देवे अथवा कुमारी पाठेके रसकी हजार पुट दे तो भी शुद्ध भस्म होता है ॥ ७९ ॥

अथ गुणाः ॥ वातपित्तकफान्मेहकुष्ठश्वासविषभ्रमान् ॥ गुल्मकासक्षतक्षीणग्रहणीपांडुकामला ॥ भगंदरादिकान्हन्यादभ्रं कामवलप्रदम् ॥ ८० ॥

टीका—अथ गुण—वात, पित्त, कफ, प्रमेह, कुष्ठ, श्वास, विष, भ्रम, गुल्म, कास, क्षतक्षीण, संग्रहणी,

पांडु, कामला और भगंदर आदिक रोग दूर करके काम और बलको देता है ॥ ८० ॥

अथापक्कदोषाः ॥ अपक्कमभ्रकं यत्स्यात्तथा चंद्रिकयान्वितम् ॥ करोति विविधान् रोगान्प्राणानपि क्षयं नयेत् ॥८१॥

टीका–अथ अपक्क दोष–जो अपक्क और चमकयुक्त अभ्रक है सो नानाप्रकारके रोग करता है और प्राणोंका भी घातक होता है ॥ ८१ ॥

अथ तच्छांतिः ॥ पिष्ट्वांबुना पिबेत्कांते धात्रीफलमतंद्रितः ॥ अपक्काभ्रविकारेण मुक्तः स्याद्दिवसत्रयैः ॥ ८२ ॥

टीका–इसवास्ते इसकी शांति कहते हैं. अथ शांति. आमला जलसे पीसके तीन दिन पिये तो अभ्रकविकार जावे ॥ ८२ ॥

अथानुपानम् ॥ गुंजैकं वा द्विगुंजं वा त्रिगुंजं गगनं नरः ॥ गुंजाचतुष्टयं वापि भक्षयेद्रोगशांतये ॥८३॥

टीका–अथ अनुपान–शुद्ध अभ्रकभस्म एक रत्ती वा दो वा तीन वा चारतक बल देखके रोगशांतिके वास्ते भक्षण करना ॥ ८३ ॥

और कुकरौंधेके रसमें २ और कैथेके फलाके रसमें जिसको कौठ भी कहते हैं ३ और आमलीके फलके रसमें ४ इन चारोंको वीस २० वीस पुट देवे. फिर निंबूके रसमें १ और गुड़युक्त दूधमें २ और गौके दहीमें ३ और घी शकरमें ४ इन चारोंमें पंद्रह १५ पुट दे तो रक्त वरण और चमकरहित शुद्ध होता है. जो चमक हो तो अशुद्ध है फिर भी पुट देना चाहिए परंतु यह तो निश्चंदही होता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७॥७८॥

पुटान्येवं सहस्राणि भिषग्बुद्धया प्रदापयेत् ॥ अथवा कन्यकाद्रावैः पुटेद्वारसहस्रकम् ॥ ७९ ॥

टीका–ऐसेही वैद्य अपनी बुद्धिसे हजार पुट देवे अथवा कुमारी पाठेके रसकी हजार पुट दे तो भी शुद्ध भस्म होता है ॥ ७९ ॥

अथ गुणाः ॥ वातपित्तकफान्मेहकुष्ठश्वासविषभ्रमान् ॥ गुल्मकासक्षतक्षीणग्रहणीपांडुकामला ॥ भगंदरादिकान्हन्यादभ्रं कामबलप्रदम् ॥ ८० ॥

टीका–अथ गुण–वात, पित्त, कफ, प्रमेह, कुष्ठ, श्वास, विष, भ्रम, गुल्म, कास, क्षतक्षीण, संग्रहणी,

पांडु, कामला और भगंदर आदिक रोग दूर करके काम और बलको देता है ॥ ८० ॥

अथापक्वदोषाः ॥ अपक्वमभ्रकं यत्स्यात्तथा चंद्रिकयान्वितम् ॥ करोति विविधान् रोगान्प्राणानपि क्षयं नयेत् ॥८१॥

टीका–अथ अपक्व दोष–जो अपक्व और चमकयुक्त अभ्रक है सो नानाप्रकारके रोग करता है और प्राणोंका भी घातक होता है ॥ ८१ ॥

अथ तच्छांतिः ॥ पिष्ट्वांबुना पिबेत्कांते धात्रीफलमतंद्रितः ॥ अपक्वाभ्रविकारेण मुक्तः स्याद्दिवसत्रयैः ॥ ८२ ॥

टीका–इसवास्ते इसकी शांति कहते हैं. अथ शांति. आमला जलसे पीसके तीन दिन पिये तो अभ्रकविकार जावे ॥ ८२ ॥

अथानुपानम् ॥ गुंजैकं वा द्विगुंजं वा त्रिगुंजं गगनं नरः ॥ गुंजाचतुष्टयं वापि भक्षयेद्रोगशांतये ॥८३॥

टीका–अथ अनुपान–शुद्ध अभ्रकभस्म एक रत्ती वा दो वा तीन वा चारतक बल देखके रोगशांतिके वास्ते भक्षण करना ॥ ८३ ॥

मधुपिप्पलिसंयुक्तं कासं श्वासं विषं भ्रमम् ॥ नाशयेत्कामलां गुल्मं पांडुं संग्रहणीमपि॥८४॥कफक्षयं प्रमेहं च ललनोत्तमभूषणे ॥ वातपित्तकफान्‌ कुष्ठं जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ ८५ ॥

टीका–कास, श्वास, विष, भ्रम, कामला, गुल्म पांडु, संग्रहणी, कफक्षय, प्रमेह, वात, पित्त, कफ कुष्ठ, जीर्णज्वर, अरोचक, इन रोगोंकी शांतिके वास्ते मधुपिप्पलीमें ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

विडंगत्र्यूषणैर्युक्तं वल्लमभ्रं निषेवितम् ॥ पांडुसंग्रहणीशूलक्षयश्वासारुचिप्रणुत् ॥ ८६ ॥ तथा मकुष्ठमंदाग्निकोष्ठरुक्कासमेहनुत् ॥ नवकंजविशालाक्षि शुक्रबुद्धिविवर्धनम् ॥ ८७ ॥

टीका–पांडु, संग्रहणी, शूल, क्षय, श्वास, अरुचि, आम, कुष्ठ, मंदाग्नि, कोष्ठरोग, कास, प्रमेह, इन रोगोंमें वायविडंग, सोंठ, मिरच, पीपल इनके चूरणमें दे. और इसी अनुपानमें धातु और बुद्धि की वृद्धि करता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

शिलाजतुकणाचूर्णमाक्षिकैः सर्व-

मेहनुत् ॥ क्षयं स्वर्णान्वितं हंति धातुवृद्धिं करोति च ॥ ८८ ॥

टीका–शिलाजीत, पीपलका चूर्ण सहतसंग प्रमेहको हरता है. क्षयको सोनेके वरखसंग नाश करता है और धातु बढ़ाता है ॥ ८८ ॥

कायस्थागुडसंयुक्तं वातलोहितकं जयेत् ॥ रक्तपित्तं निहंत्यभ्रं द्राविडीसितयान्वितम् ॥ ८९ ॥

टीका–वातरक्तमें गुड़ हरड़संग रक्तपित्तमें इलायची शकरसंग देना ॥ ८९ ॥

त्रिकटुत्रिफलात्रिसुगंधसिता–गजकेशर माक्षिकसंयुतखम् ॥ द्युति पांडुगदं क्षयमुत्पललोचने सत्पथगाग्रसरे ललने ॥९०॥

टीका–सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, आमला, बहेड़ा, तज, पत्रज, इलायची, शकर, नागकेशर इनका चूरण और सहतमें अभ्रक ले तो हे सतीमें श्रेष्ठ कमललोचने! पांडु और राजयक्ष्मा जाता है ॥९०॥

भूधात्रीशर्कराव्यालदंष्ट्रैलाक्षीरसंयुतम् ॥ मूत्रकृच्छ्रं प्रमेहं च हंत्यभ्रं नवयौवने ॥ ९१ ॥

टीका-भूआमला, शक्कर, गोखरू, इलायची, इनका चूरण और गाईके दूधमें अभ्रक लेवे तो मूत्रकृच्छ्र प्रमेह जावे ॥ ९१ ॥

सितोपलाऽमृतासत्वयुक्तं मेहगणं जयेत् ॥ मध्वाज्याग्यारजोयुक्तं वीर्यकृन्नेत्ररोगहृत् ॥ ९२ ॥

टीका-प्रमेहमात्रमें गिलोइका सत्व और मिश्रीसंग. त्रिफलाका चूर्ण और मधुघीसंयुक्त लेवे तो वीर्यवृद्धि हो ओर नेत्ररोग जावे ॥ ९२ ॥

आरुष्करयुतं हन्यादर्शांसि विविधानि वै धातुस्तंभकरं भंगासंयुतं मधुरस्वरे॥९३॥

टीका-भिलावाँयुक्त नानाप्रकारका अर्शरोग हरे. भाँगसंग वीर्यस्तंभन करे ॥ ९३ ॥

भार्ङ्गीपौष्करविश्वाश्वगंधामध्वन्वितं जयेत् ॥ वातं कट्फलपांचालीमधुयुक्तं कफामयम् ॥ ९४ ॥

टीका-भारंगी, पुष्करमूल, सोंठ, असगंध जिसको आसगंधभी कहते हैं. इनका चूरण और अभ्रक मधुसंग लेवे तो वातके रोग जावे. कायफल, पीपल मधुसंग लेवे तो कफरोग जाय ॥ ९४ ॥

सर्वक्षारयुतं वह्निं दीपयेदलिकुंतले ॥ मूत्रकृच्छ्रं तथा मूत्राघातकं घातयेद्ध्रुवम् ९५

टीका—हे भ्रमरोंके तुल्य केशवाली ! सर्व क्षारोंमें लेवे तो मंदाग्नि, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, जलदी जाताहै

लवंगमधुसंयुक्तं शुक्रवृद्धिप्रदं प्रिये॥गोदुग्धशर्करायुक्तं पित्तातंकप्रणाशनम् ।९६।

टीका—लवंग और मधुसंग लेवे तो धातुवृद्धि होवे, गोदुग्ध और शकरसंग पित्तरोग हरे ॥९६॥

अन्यान् रोगान् जयेद्युक्त्या गगनेन भिषग्वरः ॥ निश्चयं मृगशावाक्षि प्रिये प्राणकुमारिके॥ ९७ ॥

टीका—और रोगोंको वैद्य अपनी बुद्धिसे अभ्रक अनुपानयुक्त करके देवे तो जीते. हे प्राणकुमारी, हे मृगके नेत्रवाली, यह निश्चय है ॥ ९७ ॥

अथ मनःशिलाशुद्धिः ॥ अजामूत्रे शिला पाच्या दोलके दिवसत्रयम् ॥ तप्तपात्रे ततः पाच्या क्षणैकं च विशुद्ध्यति ॥९८॥

टीका—अथ मनःशिलाविधि—तत्र शुद्धि—मैनशिल बकरीके मूत्रमें दोलायंत्रमें तीन दिन पचावे. फिर गरम खपरा वा कुरछी वा तवापर क्षणभर रखे तो शुद्ध होवे ॥ ९८ ॥

अथान्यः ॥ शृंगबेरस्य तोयेनाऽगस्तिप
त्रांबुनाऽथवा ॥ सप्तकृत्वः पृथग्भाव्य
मनोह्वा शुद्धिमृच्छति ॥ ९९ ॥

टीका–दूसरी और तीसरी विधि-आदेके रसमें अथ
वा अगस्तिके रसमें सात भावना देवेतो शुद्ध होवे ९

अन्योऽपिप्रकारः॥गवां तक्रेण यामैकं म
र्दनाच्छुभखल्वके ॥ नागमाता विशुद्ध
स्याच्छुद्धचित्ते वरांगने ॥ १०० ॥

टीका–चौथी विधि–गाईके माठामें एक प्रह
खरल करे तोभी मनशिल शुद्ध होता है ॥ १००।

अथ गुणाः ॥ ज्वरं नेत्रामयं श्वासं कास
भूतभयं कफम् ॥ कृच्छ्रं विषं मनोगुप्ता
हंति कुष्ठादिकामयान् ॥ १ ॥

टीका–अथ गुण–ज्वर, नेत्ररोग, श्वास, कास,
भूतपीडा, कफ, कृच्छ्र, विप और कुष्ठादि रोगोंको
हरता है ॥ १ ॥

अथानुपानम् ॥ पिप्पलिलिंबुफलाभ्यां
शिला विमर्द्यासुकेरिवाह्निरसैः ॥ गुटिका
ज्वरामयघ्नी त्रिदोषभूतं ज्वरं निहंत्येवर

टीका—अथ अनुपान—पीपल, नींबके फल, मैनशिल करेलाके रसमें घोटके चनाप्रमाण गोली त्रिदोषज्वरमें देना ॥ २ ॥

शिलाया द्विगुणं शंखमर्धं मारीचकं रजः॥ सैन्धवं स्याच्चतुर्थांश चूर्णं नेत्रगदापहम् ३

टीका—मनःशिला एक भाग, शंख दो भाग, मिरच मनशिलसे आधा, सैंधवलोन मिरचसे आधा भाग इनका सूक्ष्म चूरन नेत्ररोगको नाश करता है ३

शुक्रं तिमिरकं हंति माक्षिकेण च पिच्चटम् अर्बुदं दधितोयेन कंजाक्षि प्रमदोत्तमे४॥

टीका—फूली तिमिर सहतसंग हरता है और चिपकापनभी जाता है. दहीके पानीसे अर्बुदरोग हरता है

कणामरिचसंयुक्ता शिलापिष्टांबुनां जिता ॥ भूतावेशहरा नेत्रे सन्निपातज्वरापहा ॥ ५ ॥

टीका—पीपल मिरचसंग जलमें पीस गोली करके अंजन करनेसे भूत और सन्निपात जाता है ॥ ५ ॥

भार्ङ्गी विश्वान्वितं श्वासं विषं स्वर्णसमन्वितम् ॥ वासकस्वरसव्योषैः कफं कासं जयेच्छिला ॥ ६ ॥

टीका-श्वासको भारंगी सोंठसंयुक्त; सोनसंग विषको, सोंठ, मिरच, पीपल, अरूसेके रसमें कफ और कासको हरती है ॥ ६ ॥

शिलैलार्जुनकासीसगृहधूमाब्दसर्जकैः ॥ सरोध्ररोचनैर्लेपः सर्षपः स्नेहसंयुतः ॥ ७ ॥ किलासं किटभं दद्रुं कुष्ठं पामां भगंदरम् ॥ इंद्रलुप्तमथार्शांसि हन्यादेव नृणामियम् ॥ ८ ॥

टीका-मैनशिल, इलायची, अर्जुनवृक्ष जिसको कौहा भी कहते हैं उसकी छाल, काशीश, घरका धुवां, नागरमोथा, राल, लोध, गोरोचन, सरसोंकातेल लेप करनेसे किलासरोग, किटभरोग, दाह, कुष्ठ, खाज, भगंदर, इंद्रलुप्त, अर्श इतने रोग जाते हैं ॥७॥८॥

अथाशुद्धदोषास्तच्छांतिश्च ॥ अशुद्धकुनटी कुर्याद्वांतिभ्रात्यादिकान् गदान् ॥ तच्छांत्यै त्रिदिनं पीत्वा मधुक्षीरं विशुद्धयति ॥ ९ ॥

टीका-अथ अशुद्ध दोष और दोषकी शांति-अशुद्ध मैनशिल उलटी, भ्रात्यादि रोग करता है. उसकी शांतिके वास्ते तीन दिन मधु दूध पीवे ॥९॥

अथ खर्परशुद्धिः ॥ रसकं नरमूत्रेण पाचयेद्दिनसप्तकम् ॥ दोलके वाथ गोमूत्रे शुद्धिमायाति खर्परः ॥ ११० ॥

टीका—अथ खपरियाशुद्धि—खपरियाको दोलायंत्रकरके मनुष्यके मूत्रमें सात दिन पचावे अथवा गोमूत्रमें पचावे तो शुद्ध हो ॥ ११० ॥

अथ गुणाः ॥ रसको हरते रोगान् रक्तदोषं गुदामयम् ॥ जीर्णज्वरमतीसारं प्रदरादिगदानपि ॥ ११ ॥

टीका—अथ गुण—खपरिया गुदाके रोग, जीर्णज्वर, अतिसार इत्यादि रोग हरता है ॥ ११ ॥

अथ दोषास्तच्छांतिश्च ॥ अशुद्धाद्रसकाद्रोगा जायंते चेत्कथंचन ॥ गोमूत्रेण शमं यांति प्रकाशेन यथ तमः ॥ १२ ॥

टीका—अथ दोष और शांति—जो अशुद्ध खपरिया सेवन करे तो अनेक रोग हों- वे गोमूत्र पीनेसे शांत होते हैं ॥ १२ ॥

अथानुपानम् ॥ एकांशं मारिचं चूर्णं द्वावंशौ रसकस्य च ॥ तद्द्वयोरष्टमांशेन नवनीतेन मर्दयेत् ॥ १३ ॥ पश्चान्निंबुकनीरेण घृतं

यावन्निगच्छति॥मर्दयेच्च ततः कृत्वा वटीं वल्लमितामियम् ॥ १४ ॥ कणामाक्षिकसंलीढा नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ ज्वरं धातुस्थितं घोरमर्शांसि प्रदरं तथा ॥१५॥ जीर्णज्वरं नेत्ररोगं पित्तार्त्तिं रक्तवैकृतिम् ॥ रक्तातीसारकं हन्यात्पथ्ये क्षीरोदनं हितम् ॥ १६ ॥

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यामुपधात्वनुपानकथने द्वितीया वीचिः ॥ २ ॥

टीका—अथ अनुपान—एक भाग मिरचका चूरण दो भाग खपरियाके, दोनोंके आठवे अंश गौके माखनमें मर्दन करे. पीछे नींबूके रसमें मर्दन करे, जबतक घी न सूखा हो. जब चिकनई जाती रहै तब तीन रत्तीकी गोली एक मधु पीपल संग खावे तो विषमज्वर, धातुगतज्वर, अर्श, प्रदर, जीर्णज्वर, नेत्ररोग, पित्तरोग, रक्तविकार, रक्तातिसार इतने रोग जावें. पथ्यमें दूधभात अथवा दूधरोटी देना ॥ १३–१६ ॥

इति श्रीमद्रमणविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणीटीकायां नौकाख्यायां द्वितीयकोष्ठकः॥ २॥

यदा देवा विधिं गत्वा तारकासुरपीडिताः ॥ तदोवाचामरान्ब्रह्मा शृणुतादितिनंदनाः ॥ १ ॥

टीका—अथ रसोंका शोधन, मारण, अनुपान कहते हैं. तहां प्रथम पारेका कहते हैं, तहां भी प्रथम पारेकी उत्पत्ति कहते हैं. जब देव तारकासुरदैत्यकरके पीड़ित होते हुए, तब ब्रह्माके पास जाके विज्ञापन करते हुए कि, हे महाराज, हमको तारकासुर अति दुःख देता है. तब देवताओंसे ब्रह्मा बोले कि, हे अदितिके पुत्र, तुम सुनो ॥ १ ॥

शिवशुक्रोद्भवेनायं मरिष्यति रिपुर्हि वाम् ॥ तदा देवाः समाजग्मुः शंकरं लोकशंकरम् ॥ २ ॥

टीका—महादेवके वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्रसे तुह्मारे शत्रु तारकासुर मरेगा. ऐसा सुनके देवता सब लोगोंका कल्याण करनेवाले महादेवजीके पास गए ॥२॥

विवाहं कारयामासुःपार्वत्या सह धूर्जटेः ॥ पश्चात्तयोर्गतः कालः सुरतं कुर्वतोर्महान् ॥ ३ ॥

टीका—और शिवका विवाह पार्वतीके संग कराते भये. फिर शिव पार्वतीको सुरत करते करते बहुत काल व्यतीत भया ॥ ३ ॥

तदा वह्निं पुरस्कृत्य देवा जग्मुस्त्रिलोचनम् ॥ दृष्ट्वा तान्व्रीडिता देवी हरं त्यक्त्वा रतोत्सुखा ॥ ४ ॥

टीका—तब सब देवता अग्निको आगे कर शिवजीके पास गए तब पार्वती देवताओंको देख लज्जा करके महादेवको छोड़ अलग जा बैठीं, परंतु मनमें रतिकी इच्छा बनी रही ॥ ४ ॥

रेतोऽपतत्तदा भूमौ तद् गृहीत्वा हुताशनः ॥ तेन तप्तः पुनः क्षिप्त्वा दिक्षु भूम्यां पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥

टीका—तब महादेवका वीर्य पृथ्वीपर पड़ता भया सो वीर्य अग्निने ग्रहण किया. फिर उस वीर्यके तेजकरके तप्त हुए अग्निने भी चारों दिशोंके विषे पृथ्वीमें डाल दिया ॥ ५ ॥

तत्र जातो रसःकांते कांताधररसप्रिये ॥ गौरीशप्त उदीच्यादित्रिदिशास्थो न कार्यकृत ॥ ६ ॥

टीका-हे प्रिये! वहां पारा उत्पन्न हुआ. सो पा
पार्वतीके शापकरके उत्तर, पूर्व, दक्षिण दिशामें स्थि
रसादि क्रियाके योग्य नाहीं है ॥ ६ ॥

पश्चिमायां तु यज्जातः स रसः सर्वसि
सिद्धिदः ॥ एषोत्पत्तिः समाख्याता
रसज्ञेऽस्य रसस्य वै ॥ ७ ॥

टीका-जो पश्चिममें पैदा हुआ सो सर्व कार्य
योग्य है. हे रसके जाननेवाले प्यारी ! यह पारे
-उत्पत्ति कही ॥ ७ ॥

वर्णभेदं प्रवक्ष्यामि तं शृणुष्व समाहित
श्वेतो विप्रो विशालाक्षि रक्तःस्यात्क्षत्रिय
प्रिये ॥ ८ ॥ पीतवर्णो रसो वैश्यः श्याम
शूद्रोऽलिकुंतले ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठ एते
शोधितः सर्वरोगहृत् ॥ ९ ॥

टीका-अब वर्णभेद कहता हूं. सो सावधान हो
सुनो. हे विशालनेत्रे, श्वेत पारा ब्राह्मण है. रक्तवर्ण
त्रिय है. पीला वैश्य और श्याम शूद्र है. इनमें ब्राह्म
श्रेष्ठ है. शुद्ध हुएसे सर्व रोग हरता है ॥ ८ ॥ ९

अथ रसे दोषाः॥नागो वंगोऽग्निश्चांचल्य

मसह्याग्निविषं मलम् ॥ गिरिश्चैते महादोषा रसेऽशुद्धे वदंति हि ॥ १० ॥

टीका--अथ पाराके स्वभाविक दोष कहते हैं- नाग १, वंग २, अग्निमें रखनेसे चंचलता ३, और अग्निको न सहना ४, विष ५, मेल ६, पर्वतका भाग ७, ए सात दोष अशुद्ध पारेमें सदा रहते हैं. ॥ १० ॥

अशुद्धो जाड्यतां कुष्ठं दाहं वीर्यप्रणाशनम् ॥ मूर्छां स्फोटं च मृत्युं च क्रमात्कुर्यान्मलैरसः ॥ ११ ॥

टीका--अथ दोषोंका कार्य । अशुद्ध पारा इतने रोग करता है--नागसे जडता १, वंगसेकुष्ठ २ अग्निकी चंचलतासे दाह करता है ३, अग्निकी असह्यतासे वीर्यनाश करता है ४, विषसे मूर्च्छा ५, मैलसे देहमें फोडे ६, पर्वतके भागसे मृत्यु करता है ७, इति ॥११॥

अथ तच्छोधनम् ॥ दैरदं निंबुनीरेण दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ऊर्ध्वपातनके यंत्रे वह्निं दत्त्वा त्रियामकम् ॥ १२ ॥ स्वांगशीते समुद्घाट्य लग्नमूर्ध्वं रसं नयेत् ॥ पुनर्बिंबस्य निंबोर्वा रसैर्यामं विमर्दितः ॥ कंचुकैर्नागवंगाद्यैर्मुक्तः स्यात्पारदोत्तमः ॥ १३ ॥

टीका—अथ शोधन कहते हैं—हिंगुलको निंबूके रसमें एक दिन मर्दन करना. फिर डमरूयंत्रमें तीन पहरकी आँच देना. फिर आपसे ठंढे होने पीछे ऊपरके पात्रमें लगा पारा ले लेना. फिर निंब वा निंबूके रसमें एक पहर मर्दन करनेसे नागवंगादिक कांचलीसे छूटा पारा शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथान्यः ॥ रसोनराजिके पिष्ट्वा मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ तत्र सूतं सुसंरुध्य स्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् ॥ १४ ॥

टीका—दूसरा प्रकार. लहसुन और राई पीसके दो मूसी बनावे. मूसीको घरिया भी कहते हैं. उस मूसीको संपुटमें पारेको बंद करके कांजीमें दोलायंत्र करके तीन दिन स्वेदन करे ॥ १४ ॥

ततः कुमारिकानीरैर्मर्दयेद्वासरं रसम् ॥ चित्रकस्वरसैः पश्चाद्वासरं मर्दयेत्ततः ॥ १५ ॥ काकमाचीद्रवैर्घस्रं वराक्काथैस्ततो दिनम् ॥ ततस्तेभ्यः समुद्धृत्य रसं प्रक्षाल्य कांजिकैः ॥ १६ ॥

टीका—फिर कुमारीपाटेके रसमें एक दिन खरल करे. फिर एक दिन चित्रकके रसमें खरल करे.

फिर एक दिन काकमाची रसमें जिसको मकोई और पीचूड़ी भी कहते हैं फिर एक दिन त्रिफलाके काढ़ेसे खरल करके कांजीसे धोवे ॥ १५ ॥ १६ ॥

ततः खल्वे विनिक्षिप्य तदर्धं सैंधवान्वितम् ॥ दिनैकं निंबुनीरेण मर्दयेदयि वल्लभे ॥ १७ ॥

टीका–हे प्रिये, फिर पारासे आधा सैंधव मिलाके नींबूके रसयुक्त एक दिन खल करे ॥ १७ ॥

ततः सूतसमानेतान् गृहीत्वा नवसादरम् ॥ राजिकां च रसोनं च प्रिये चैतैस्तुषांबु वा ॥ १८ ॥ संमर्द्य च क्रियां कृत्वा शोषयित्वा प्रलेपयेत् ॥ हिंगुना शोषयेत्पश्चादूर्ध्वपानतके न्यसेत् ॥ १९ ॥

टीका–फिर पारेकी बराबर नवसागर, राई, लहशुन इनको लेके इनमें मर्दन करके टिकिया बनावे सुखावे. फिर हींग लेपन करै, फिर सुखाके डमरूयंत्रमें धरे ॥ १८ ॥ १९ ॥

तां चक्रिकामधस्थाल्यां पूरयेल्लवणेन हि ॥ अधः स्थालीं ततो मुद्रां दत्त्वा दृढतरां बुधः ॥ २० ॥

टीका-नीचेकी हांडीमें वह टिकड़ी धरके और उस हंडीको लवणसे भर दे फिर अधस्थालीको दृढ मुद्रा देवे ॥ २० ॥

विशोष्य स्थापयेच्चुल्ल्यामधो वह्निं त्रियामकम् ॥ दत्त्वा तीक्ष्णमुपर्यंबु निषिंचेत्सुप्रयत्नतः ॥ २१ ॥

टीका-फिर सुखावे. सूखे पीछे चूल्हेपर रखके तीन पहर तीक्ष्ण अग्नि देवे. और बड़े यत्नसे ऊपरकी हांड़ी जलसे तरकीवके साथ भीगी राखे ॥ २१ ॥

स्वांगशीतं समुद्घाट्य तिर्यक्कृत्वा प्रयत्नतः ॥ अथोर्ध्वभांडसंलग्नं गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् ॥ २२ ॥

टीका-स्वांगशीतल भये पीछे तिरछी करके यत्नसे खोले. ऊपरकी हंडीमें लगा शुद्ध पारा ले लेवे ॥२२॥

पश्चाद्बलप्रकर्षाय स्वेदयेद्दोलयंत्रके ॥ सिंधूत्थचूर्णगर्भस्थं वस्त्रे बध्वोत्तमो रसः ॥ २३ ॥

टीका-फिर सेंधवके चूर्णके बीचमें रखके वस्त्रमें बांधके दोलायंत्रमें केवल जलसे स्वेदन करे, तो पारा बलवान् होता है ॥ २३ ॥

अथ रसजारणम्॥तत्रासामान्यतःषड्गु
णबलिजारणम् ॥ ससूतमल्पकं भांड
वालुकायंत्रके न्यसेत् ॥ षड्गुणं गंधकं
तत्र क्षिपेदल्पाल्पकं शनैः ॥ २४ ॥

टीका—अथ रसजारण—तहां सामान्यसे छ गुन गंधक जारण कहते हैं. छोटेमृत्तिकाके पात्रमें पार रखके वालुकायंत्रमें धरे. फिर छ गुणा गंधक थोड़ थोड़ा ऊपरसे डारता जावे ॥ २४ ॥

द्रवीभूतबलिं ज्ञात्वा शीघ्रमुत्तार्य
यत्नतः॥स्वांगशीते दृढे गंधे स्फो-
टयित्वा नयेद्रसम्॥ २५ ॥

टीका—जब गंधक गलजावे तब धीरेसे उता लेवे. जब ठंढा होवे तब गंधकको फोरके शुद्ध पार निकाल लेवे ॥ २५ ॥

सर्वरोगहरः सूतो हरः पापहरो यथा ॥
पतिप्राणप्रिये कांते यत्ते हरिहरार्चने॥२६
(यत्ता सावधाना) ॥

टीका—हे पतिके प्राणके सदृश प्रिये, विष्णु और शं करके पूजनको सावधान रहनेवाली, पारा सर्वरोगोंको हरनेवाला है. जैसे महादेव सर्व पाप हरनेवाला है २६

अथ षड्गुणगंधकजारणफलम् ॥ समांशे गंधके जीर्णे शुद्धाच्छतगुणो रसः । गंधके द्विगुणे जीर्णे सर्वकुष्ठनिषूदनः ।२७।

टीका–अथ छ गुण गंधक जारनेका फल. पारेके समान गंधक जीर्ण होनेसे शुद्धसे भी सौ गुणा उत्तम पारा होता है. दूना गंधक जीर्ण होनेसे कुष्ठनाशक होता है ॥ २७ ॥

गंधके त्रिगुणे जीर्णे जाड्यहा रस उत्तमः॥जीर्णे चतुर्गुणे गंधे वलीपलितजिद्रसः ॥ २८ ॥

टीका–त्रिगुण गंधक जीर्ण होनेसे जड़ताको हरता है. चौगुना जीर्ण होनेसे वलीपलितनाशक होता है ॥ २८ ॥

गंधे बाणगुणे जीर्णे क्षयक्षयकरः शिवः ॥ गंधे रसगुणे जीर्णे सर्वातकप्रणाशनः ॥ २९ ॥

टीका–पंचगुण जीर्ण होनेसे क्षयरोगहारक होता है, छ गुणा गंधक जीर्ण होनेसे सर्व रोगहारक होता है ॥ २९ ॥

सत्यं सत्यं शिवो देवीमुवाच स्वप्रि-

यामये ॥ त्वां वदाम्यरविंदाक्षि हिताय जगतामपि ॥ ३० ॥

टीका—हे कमलनेत्रे, यह सत्य है. शिवजीने अपनी प्रिया पार्वतीसे कहा है. मैं भी जगतके उपकारके वास्ते तुमसे कहता हूं ॥ ३० ॥

जारणस्य विशालाक्षि शृणु माहात्म्यमुत्तमम् ॥ सर्वपापे प्रणष्टे हि प्राप्यते सूतजारणम् ॥ ३१ ॥

टीका—अब जारणका माहात्म्य सुनो. जब सर्व पाप नष्ट होते हैं तब पारेका जारण प्राप्त होता है ३१

तस्मिन्प्राप्ते हि विज्ञानं प्राप्यते मुक्तिलक्षणम् ॥ यथा सूर्योदये प्राप्ते प्रकाशं प्राप्यते जनः ॥ ३२ ॥

टीका—तिसके प्राप्त होनेसे मुक्तिलक्षण विज्ञान प्राप्त होता है. जैसे लोगोंको सूर्योदयसे प्रकाश प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

यावद्घस्राणि वह्निस्थं रक्षयेत्पारदं प्रिये ॥ तावदब्दसहस्रांतं शंभुलोके महीयते ॥ ३३ ॥

टीका—हे प्रिये, जितने दिन अग्निमें पारेको राखे तितनेही हजारवर्ष शिवलोकमें पूज्य होवे ॥ ३३ ॥

वह्निस्थं रक्षयेद्यो वै घस्रैकं पारदं प्रिये॥ तस्य पापानि नश्यंति कुर्वन्नन्यैर्न लिप्यते ॥ ३४ ॥

टीका–जो एक दिन अग्निमें पारा रख ले तिसके पूर्व किये पाप नष्ट हो जाते हैं. और करे भी तो लगे नहीं ॥ ३४ ॥ ॥ इति रसजारणफलम् ॥

अथ रसस्य बुभुक्षितकरणम्॥शृंगको वत्सनागश्च कालकूटः प्रदीपनः ॥ सौराष्ट्रिको ब्रह्मपुत्रो हारिद्रःसक्तुकस्तथा॥हालाहल इति प्रोक्ता विषभेदा नव ह्यमी॥३५॥

टीका–अथ पाराको बुभुक्षित करना कहते हैं. शृंगक १ वत्सनाग २ कालकूट ३ प्रदीपन ४ सौराष्ट्रिक ५ ब्रह्मपुत्र ६ हारिद्रक ७ सक्तुक ८ हालाहल ९ ये नव विषके भेद हैं ॥ ३५ ॥

अर्को वज्री तथोन्मत्तो लांगली हयमारकः ॥ गुंजाहिफेनमित्येते भेदाश्चोपविषस्य हि ॥ ३६ ॥

टीका–आंकड़ा १ थूहर २ धत्तुर ३ लांगली ४ कनेर ५ गुंजा ६ अफीम ७ ये सात उपविष हैं ३६

एतैः संमर्दितः सूतश्छिन्नपक्षो भवेद्ध्रुवम् ॥ बुभुक्षा जायते चास्य धातूनन्यांश्चरत्यपि ॥ ३७ ॥

टीका–इनकरके मर्दन किया पारा छिन्नपक्ष अर्थात् पंखरहित होता है. और भूंखा भी होता है. तब और धातुओंको खाता है. ॥ ३७ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ द्वौ क्षारौ त्रिकटुश्चापि राजिका नवसादरम् ॥ हुताशनश्च शिग्रुश्च रसोनः पटुपंचकम् ॥ ३८ ॥

टीका–अथ दूसरा प्रकार–साजीखार, जवाखार, सूंठ, मरिच, पिप्पल, जिसको सेगट भी कहते हैं. लहशुन, बिडलोन, सांभरलोन, समुद्रलोन, सैंधवलोन, संचललोन ॥ ३८ ॥

रसात्समांशकैरेभिर्मर्दयेन्निंबुकद्रवैः ॥ जंबीरस्वरसैर्वापि कांजिकैर्वा प्रयत्नतः॥३९

टीका–उनको पाराके समभाग लेके नींबूका रस वा जंभीरीका रस वा कांजीसे बड़े यत्नके साथ॥३९॥

तुषवह्निस्थके खल्वे अहोरात्रैस्त्रिभिर्भवेत् ॥ बुभुक्षितो रसो वाले सर्वधातुचरो भवेत् ॥ ४० ॥

टीका—इनके संग पारा मिलाके धानके तुषकी अग्निपर खरल रखके तीन दिन मर्दन करे तो पारा भूखा होता है और सर्व धातुको खाता है ॥ ४० ॥

अथ मारणविधिः ॥ गंधकं नवसारं च सौराष्ट्रीं धूमसारकम् ॥ रसं भागैः समान् सर्वान्याममम्ले मर्दयेत् ॥ ४१ ॥ मृद्वस्त्रवेष्टितायां तत्काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥ वक्रे कूप्या दृढां मुद्रां दत्त्वा सम्यग्विशोषयेत् ॥ ४२ ॥

टीका—अथ मारण—गंधक, नवसादर, सोरठी माटी, जो सोरठी माटी न मिले तो फटकरी, घरमेंका धुवां और पारा ए समभाग ले एक प्रहर कोई भी खटाईसे मर्दन करे पीछे कपरड़ मिट्टीकी हुई शीशीमें भरे. फिर शीशीके मुखमें दृढ मुद्रा देके सुखावे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अधश्छिद्रान्विते भांडे पंचास्ये मृन्मये न्यसेत् ॥ कूपिकां वालुकापूरैः पूरयेदागलं च ताम् ॥ ४३ ॥ पंचास्ये विस्तृतमुखे

टीका—फिर एक कूंडा गहिरा मट्टीका ले, उसके नीचे छिद्र करे. उसपर शीशी रखके शीशीके गलेपर्यंत वाल्ह रेत भरे ॥ ४३ ॥

चुल्ल्यां संन्यस्य शनकैरग्निं दत्त्वाब्धियामकम् ॥ पश्चाद्धि वर्धयेद्वह्निं क्रमात्सम्यक् प्रयत्नतः॥४४॥एवं द्वादशभिर्यामैः पारदो भस्मतां व्रजेत् ॥ स्वांगशीतां हितां कूपीं स्फोटयेन्मधुरस्वरे ॥ ४५ ॥

टीका–हे मधुर स्वरवाली ! फिर धीरेसे चूल्हेपर धरे फिर चार पहरकी मंद आंच देवे फिर तेज आंच क्रमसे वढावे. ऐसे बारह १२ पहरकी आंचसे पारा भस्म होता है. फिर आपसे शीतल हुएपर शीशीको फोडै ४४।४५

ऊर्ध्वलग्नं त्यजेद्गंधमधस्तं पारदं मृतम् ॥ गृहीत्वा सर्वकार्येषु योजयेदामयापहम् ॥ ४६ ॥

टीका–शीशीमें ऊर्ध्व लगा गंधक छोड देवे और नीचे मरा पारा लेलेवे सो सर्व कार्य करनेवाला है और रोगनाशक है ॥ ४६ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ काष्ठोदुंबरिकादुग्धैर्मर्दयेत्पारदं ततः ॥ अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मे विमुद्रयेत् ॥ ४७॥

टीका–अथ तीसरा प्रकार–पारेको कठूमरके

दूधमें मर्दन करके गोला बनाके फिर अपामार्गके बीजोंके दो मूसे बनावे जिसमें पारेका गोला धरे४७

द्रोणपुष्पीप्रसूनानां विडंगमरिमेदयोः॥कल्कैर्मूषां विलिप्यैव परितोंऽगुलमात्रकम् ॥ ४८ ॥

टीका—फिर द्रोणपुष्पी जो गूमा उसके पुष्प और वायविडंग और खैर इनकी लुगदी मूसाके चौतरफ एक अंगुल फिरती लगावे ॥ ४८ ॥

तद्गोलं मृन्मये न्यस्य मूषायुग्मे विमुद्रयेत् ॥ मृद्वस्त्रैः शोष्य नागाह्वे पाचयेद्धि पुटे रसम् ॥ भस्मीभूतं रसं नेयं योजयेत्सर्वकर्मसु ॥ ४९ ॥

टीका—फिर उसको माटीके संपुटमें रखके कपरौटी कर सुखाके गजपुट आंच दे तो पाराभस्म सर्वकार्ययोग्य होवे ॥ ४९ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ मलयूदुग्धसंमिश्रं रसराजं विमर्दयेत्॥तद्दुग्धमिश्रहिंगोश्च मूषायुग्मे विमुद्रयेत् ॥ ५० ॥

टीका—अथ चौथा प्रकार—पारेको कठूमरीके दूधमें मर्दन करे और उसीके दूधमें हींग घोटके दो मूसा बनावे उसमें वह पारा भरे ॥ ५० ॥

तां मूपां मृन्मये रुद्ध्वा मूपायुग्मे तु वेष्टयेत् मृद्वस्त्रैः सप्तभिः पश्चाच्छोपयेदातपे भृशम् ॥५१॥ पुटेन्मृदुपुटे यत्नाद्रसो भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ नवयौवनसौंदर्यभूषणे मदिरेक्षणे ॥ ५२ ॥

टीका–फिर उस मूपाको मट्टीके संपुटमें बंद करके सात कपरौटी करे. फिर सुखाके हलकीसी पुट देवे तो भस्म होवे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथान्यः ॥ नागवल्लीरसैः पिष्टः कर्कोटीकंदगर्भगः ॥ मृन्मूपासंपुटे पक्वो रसो यात्येव भस्मताम् ॥ ५३ ॥

टीका–अथ पांचवां प्रकार–नागबेलके (पानके) रसमें खरल करके वांझककोड़ीके मूलमें संपुट करके पुट दे तो भस्म हो ॥ ५३ ॥

अथ गुणाः ॥ रसो रसरसैर्युक्तः शोधितो भस्मासात्कृतः ॥ त्रिदोषशमनः कामवर्धनः सर्वरोगहृत् ॥ ५४ ॥

टीका–अथ साधारणगुण. पारा छ रसकरके युक्त है. सो पारा शुद्ध भस्म कियाहुआ त्रिदोषको शांतकरता है कामदेवको बढ़ाता है और सब रोगोंको हरता है ५४

कामिनीदर्पदलनः सुधास्पर्धी सुवर्णकृत् ॥ चक्षुष्यः स्मृतिदो वल्यो रूपदः कृमिकुष्ठहा ॥ ५५ ॥

टीका-कामिनी स्त्रीके दर्पको दूर करता है. अमृततुल्य है. सुवर्णकारक है. नेत्र निर्मल करता है. स्मृति और बल और रूपको देनेवाला है. कृमि और कुष्ठको नाश करता है. ॥ ५५ ॥

जरामरणजाड्यघ्नो योगवाही वरांगने ॥ दहत्यग्निस्तृणानीव धातुस्थानामयान्रसः ॥ ५६ ॥

टीका-जरा अवस्था, अपमृत्यु और जड़ता इनका नाशक है. और योगवाही है जैसे अनुपानसे देवे वैसाही गुण करे. जैसे अग्नि घासको जलाता है वैसे धातुगत रोगोंको पारा जलाता है ॥५६॥

अथ दोषाः पूर्वमेवोक्ताः तच्छांतिः कथ्यते॥ गवां दुग्धयुतं पीत्वा गंधकं दिनसप्तकम् ॥ पारदस्य विकारेण मुक्तः सुखमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

टीका-दोष तो पहले कह आए हैं अब शांति कहते हैं, गौके दूधमें सात दिन गंधक पीनेसे पारदविकार शांति होता है ॥ ५७ ॥

अथानुपानम् ॥ गुंजैकमानमारभ्य चतुर्गुंजावधिं नरः ॥ रसराजं प्रिये युक्त्या भक्षयेदनुपानतः ॥ ५८ ॥

टीका–अथ अनुपान–एक रत्तीसे लेके चाररत्तीतक पाराका सेवन बलाबल देखके करे ॥५८॥

घृतवह्निजचूर्णेन मगधामधुनाऽथवा ॥ मधूच्छिष्टघृताभ्यां वा सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ५९ ॥

टीका–कालीमिर्च और घृतसंग अथवा मधु पिप्पलीसंग अथवा घृत मधुसंग सर्व रोगमें देवे ॥५९॥

पित्ते क्षीरसितायुक्तं पिप्पल्याथ समीरणे ॥ श्लेष्मण्यार्द्रकजैर्नीरैर्ज्वरे जंबीरजैरसैः ॥ ६० ॥

टीका–पित्तमें दूध शकरसंग, वातरोगमें पीपरसाथ, कफमें आदेके रसयुक्त, ज्वरमें जंभीरीके रसमें देना ॥ ६० ॥

मधुना रक्तविकृतौ दध्नातीसारके गदे ॥ समतोयशृतं दुग्धं पीत्वा पश्चात्सितायुतम् ॥ ६१ ॥

टीका–रक्तविकारमें मधुसाथ, अतीसारमें दही

साथ लेके ऊपरसे पथ्यमें यह कि दूध पानी मिलाके औटे. जब पानी सूखके दूध रहे तिसमें शक्कर डालके पीवे ॥ ६१ ॥

रक्तातीसारके देयं मेघनादभवे रसैः ॥ प्रतिश्याये कफे दुष्टे गुडसर्पिर्मरीचकैः ॥६२॥ पथ्येऽन्नं सदधि स्निग्धं कवोष्णं भोजने हितम् ॥ हितमालिंगनं ते स्याद्यथा मे मदनज्वरे ॥ ६३ ॥

टीका–रक्तातीसारमें चौलाईके रसमें (चौलाईको ताडुलिया भी कहते हैं) जुखाममें और कफ बिगड़ेमें गुड़ मरिच घृतसाथ लेके सचिक्कण दहीके साथ गरमागरम भोजन करे तो जैसा मदनकी पीड़ामें आलिंगन वैसा हित है. ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

वीर्यवृद्धौ तथा स्तंभे माषकूष्मांडयष्टिजैः ॥ चूर्णैर्दुग्धसितायुक्तैर्मधुसर्पिर्युतैस्तु वा ॥ ६४ ॥

टीका–वीर्यवृद्धि तथा वीर्यबंधनके वास्ते उड़द, भूरा कुह्मड़ा, जेठी मधु जिसको मुलेठी कहते हैं, इनके चूर्णमें पाराभस्म लेके ऊपरसे दूध शक्कर पिये अथवा मधु घृतमें लेवे ॥ ६४ ॥

तृतीयके ज्वरे पित्ते भ्रमे मधुसितायुतम् ॥ जग्ध्वा मेघामृतारक्तधान्याकजलजं पिबेत् ॥ ६५ ॥ क्वाथं कमलभू कांतातुल्यशीले मनोहरे ॥सुखी स्यात्ते रतावास्यचुंबनेन यथा त्वहम् ॥ ६६ ॥ रक्तं रक्तचंदनम् ॥ जलमुशीरम् ॥

टीका–तृतीयज्वर, पित्त, भ्रम इन रोगोंमें मधुशर्करयुक्त लेवे फिर तुरतही नागरमोथा, गिलोय, रक्तचंदन, धनिया, उशीर जिसको खस भी कहते हैं इनका काढ़ा पिये ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

रक्तपित्ते कफे कासे श्वासे क्वाथेन सेवयेत् ॥ द्राक्षावासाशिवानां भोः पथ्ययुक्तो वरांगने ॥६७॥

टीका–हे सुंदर अंगोंवाली रक्तपित्त, कफ, श्वास, कास इनमें द्राख और अरूसा, इनके काढ़ेमें पथ्य करके लेवे ॥ ६७ ॥

मेदोगदे शालिमंडैर्वाम्बुमाक्षिकसंयुतम् ॥ भजेद्गजास्यतुल्योऽपि स्थूलः कृशतरो भवेत् ॥ ६८ ॥

टीका–मेदरोगमें चावलके मांडमें अथवा मधु

पानीके साथ लेवे तो गजाननके सरीखा स्थूल भी कृश होजावे ॥ ६८ ॥

नष्टपुष्पे रक्तगुल्मे शिवशस्त्राभिधे गदे ॥ क्वाथे कृष्णातिलोत्थे तु भार्ङ्गीत्रिकटुहिंगुजैः ॥ ६९ ॥ चूर्णैस्तु सगुडैर्युक्ते रसभूतिर्निषेविता ॥ सुखदा त्वं यथा रात्रौ प्रिये शृंगारसंयुता ॥ ७० ॥

टीका–जिस स्त्रीका रज नष्ट हुआ हो सो और रक्तगुल्मवाली और शूलरोगमें भारंगी, सोंठ, मिरच, पींपरी, हींग, गुड़, इनके साथ लेके ऊपरसे काले तिलोंका काढा पिये तो हे प्रिये ! जैसी शृंगारसे युक्त रातमें सुख देनेवाली तुम हो वैसी होगी और शीघ्र दुःख जावे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ पथ्यम् ॥ मुद्गयूपघृतं दुग्धं शाल्यन्नं सैंधवं तथा ॥ नागरं पद्ममूलं च मुस्तकं गिरिमल्लिका ॥७१॥ शाकं पौनर्नवं श्रेष्ठं मेघनादं च वास्तुकम् ॥ अभ्यंगं सुखदं स्नानं कोष्णतोयेन नित्यशः ॥ ७२ ॥

टीका–अथ पारासेवनमें पथ्य–मूँगका जूप, घृत, दुग्ध, चावलका भात, सेंधव लवण, सोंठ, कम-

लकी जड़, मोथा, गिरमर, पुनर्नवाका शाक, चौलाईका शाक, बथुवाका शाक, तैलमर्दन, नित्य गरम जलसे स्नान ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

रूपयौवनसंपन्नां स्वानुकूलां भजेत्प्रियाम् ॥ तेन बुद्धिर्बलं कांतिर्वर्धते रससेविनः ॥ ७३ ॥

टीका—और रूपयौवनयुक्त अपनी प्यारी स्त्रीसे संग करे तो पारा सेवनेवालेकी बुद्धि, बल, कांति बढ़ाता है ॥ ७३ ॥

अथापथ्यम्॥कलिंगं कर्कटीं चैव कूष्मांडं कारवेल्लकम् ॥ कुसुंभशाकं कर्कोटीं कदलीं काकमाचिकाम् ॥ ७४ ॥

टीका—अथापथ्य.—तरबूज, जिसको कलींदा भी कहतेहैं, काकड़ी, कूष्मांड, करेला, कुसुंभका शाक, ककोड़ा, केला कंद काकमाची जिसे मकोय भी कहतेहैं

ककाराष्टकमित्येतद्वर्जयेद्रससेवकः ॥ जराव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ७५ ॥

टीका—ए ८ ककारादि वस्तु रससेवक त्यागे तो जरा व्याधिसे मुक्त होके सुखकरके सौवर्ष जीवे ७५

अथ रसकर्पूरविधिः ॥ संक्षेपाद्धि रसं पूर्वं शोधयेच्छुद्धमानसे ॥ पश्चाच्छुद्धेन प्रत्येकं तुल्यं कृत्वा रसेन हि ॥ ७६ ॥

टीका-अथ रसकर्पूरविधि-पहले संक्षेपसे पारेको शुद्ध करे फिर प्रत्येक द्रव्य जो अगाड़ी लिखी हैं सो पारेकी बराबर लेना ॥ ७६ ॥

गैरिकं खटिकामिष्टिं सौराष्ट्रीं सैंधवं तथा ॥ टंकणं क्षारलवणं मृत्स्नांचूर्णं सुसूक्ष्मकम् ॥ ७७ ॥

टीका-गेरू, खड़ी, ईंट, सोरठी, मट्टी अथवा फटकरी, सैंधव लवण, टंकण और खारी लोन, मुलतानी मट्टी इनका बारीक चूरण करे ॥ ७७ ॥

एतच्चूर्णान्वितं सूतं यामैकं मर्दयेत्ततः ॥ उर्ध्वपातनक यंत्रे वह्निं दद्याच्छनैःशनैः

टीका-फिर इस चूर्णके संग एक प्रहरभर पारेको मर्दन करे. फिर उर्ध्व पातनयंत्रमें मंद मंद आंच देवे ॥ ७८ ॥

अहोरात्रैश्चतुर्भिश्च ततो वै स्वांग-

१. खटिका (खरी) । २. इष्टिम् (ईंट) इति प्रसिद्धम् । ३. मृत्स्ना (मुलतानी मट्टीति लोके प्रसिद्धा) ।

शीतलम् ॥ उद्घाट्योर्ध्वविलग्नं वै रसं कर्पूरसंज्ञिकम् ॥ ७९ ॥

टीका—चार रात्रि और दिन आंच देवे. फिर स्वयं शीतल भये पीछे खोलके उर्ध्वपात्रमें लगा रसकपूर ले लेवे ॥ ७९ ॥

गृहीत्वा सर्वरोगघ्नं बलबुद्धिविवर्धनम् ॥ वृंताकशतकैः शुद्धं भक्षितं गुणवत्तरम् ८०

टीका—यह रसकर्पूर सर्व रोगका हरनेवाला है और बलबुद्धिका बढ़ानेवाला है. सौ बैंगनमें शुद्ध किया बहुत गुण देता है. शुद्ध ऐसे करे कि, बैंगनके बीचमें रसकपूर धरके थोडीसी अग्निमें पचावे जब बैंगन पाक जावे तब निकालके दूसरे बैंगनमें धरे. ऐसे सौ १०० बैंगनमें शोधे ॥ ८० ॥

कस्तूरिकाचंदनदेवपुष्पैः सकुंकुमैरञ्जविलोचने यः ॥ कर्पूरकं पारदसंभवं ना निषेवयन्संजयते फिरंगम् ॥ ८१ ॥

टीका—हे कमलनयने ! शुद्ध रसकपूर, कस्तूरी चंदन, लवंग, केसर, समभाग मिलाके एक रत्ती सेवन करे तो फिरंगरोग जावे ॥ ८१ ॥

सोपद्रवं विंदति चाग्निदीप्तिं वीर्यं बलं पुष्टि-

मदीर्घकालात् ॥ स्त्रीणां समूहं रमयेत्प्रिये त्वं मया रमस्वाद्य निषेवितं मे ॥ ८२ ॥

टीका—और फिरंगके उपद्रव भी जावे. भूँख बढ़ावे, वीर्यबलपुष्टि करे. स्त्रीके समूहसे रमे ॥ ८२ ॥

अथ दोषाः ॥ सेवितोऽविधिना कुष्ठं संधिवातं कफादिकम् ॥ रसकर्पूरकः कुर्यात्तस्माद्यत्नेन सेवयेत् ॥ ८३ ॥

टीका—अथ दोष—जो विधिहीन रसकपूर सेवन करे तो कुष्ठ, संधिशोथ, कफवात पैदा करे. इसवास्ते यत्नसे सेवन करे ॥ ८३ ॥

अथ तच्छांतिः ॥ महिषीशकृतो नीरं धान्याकं वा सितायुतम् ॥ पिबन्नीरेण मुक्तः स्याद्रसकर्पूरजैर्गदैः ॥ ८४ ॥

टीका—अथ शांति—भैंसके गोबरका पानी अथवा धनिया और शकर पानीसे पिये तो रसकपूरविकार जावे ॥ ८४ ॥

अथ रससिंदूरविधिः ॥ शुद्धं गंधं रसाच्छुद्धादर्धभागं विमिश्रयेत् ॥ तयोः कज्जलिकां कूप्यां काचमय्यां विनिक्षिपेत् ॥८५॥

टीका—अथ रससिंदूरविधि—शुद्ध पारेसे आधा

शुद्ध गंधक मिलाके कजली करके आतशी काँच की शीशीमें भरे ॥ ८५ ॥

मृद्वस्त्रैः कुट्टितैः कूपीं लेपयेच्छोषयेत्ततः ॥ स्थापयेद्वालुकायंत्रे वह्निं दद्याच्छनैः शनैः ॥ ८६ ॥

टीका–फिर शीशीके ऊपर मृत्तिका और वस्त्र खूब कूटके लेप करके सुखावे. फिर वालुका यंत्रमें मंद मंद आंच देवे ॥ ८६ ॥

चतुर्यामावधिं पश्चात्स्वांगशीतां हि कूपिकाम् ॥ स्फोटयेदूर्ध्वसंलग्नं सिंदूराभं रसं नयेत् ॥ ८७ ॥

टीका–ऐसे चार दिनरात निरंतर आंच देवे फिर आपसे ठंढे होनेपर सीसीको फोड़के उसके ऊपरके भागमें लगा रससिंदूर ले लेवे ॥ ८७ ॥

अथान्यः उत्तमःप्रकारः॥ पारदं गंधकं तुल्यं गंधार्धं नवसादरम् ॥ कज्जलीं चित्रककाथैस्तथोन्मत्तदलांबुना ॥ ८८ ॥ कुमारीस्वरसैर्वस्रं पृथक्कृत्वा विमर्दयेत् ॥ काचकूप्यां विनिस्थाप्य लेपयेत्कूपिकां प्रिये ८९

टीका–अथ दूसरी उत्तम विधि–पारा, गंधक सम

भाग और गंधकसे आधा नवसादर इनकी कज्जली करे. तिस कज्जलीको चित्रकके काढ़ेमें और धतूरेके पत्रके रसमें और घीकुमारिके रसमें न्यारा न्यारा एक एक दिन मर्दन करे. फिर कांचकी शीशीमें भरके ऊपर लेप चढ़ावे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

तद्विधानं प्रवक्ष्यामि तच्छृणु त्वं समाहिता ॥ खटिकां लोहकिट्टं च चूर्णयेद्वस्त्रगालितम् ॥ ९० ॥

टीका—लेपका विधान कहतेहैं सो तुम सुनो. खड़ी और लोहका कीट सूक्ष्म चूरण कर कपड़ेमें छाने ९०

लोहकिट्टचतुर्थांशं चूर्णं गोधूमसंभवम् ॥ दिनैकं मर्दयेत्सर्वं सवस्त्रं लेपयेच्च ताम् ॥ ९१ ॥

टीका—और लोहकीटका चौथा भाग गेहूंका आटा मिलाके एक दिन मर्दन करे फिर वस्त्रमें लगाके सीसीमें लेप लगावे ॥ ९१ ॥

कूपिकां शोषयेत्पश्चाल्लेपयेच्छोषयेत्ततः ॥ सप्तवारं प्रलिप्यैवं शोषयेत्तां निधापयेत् ॥ ९२ ॥

टीका—फिर शीशी सुखाके फिर लगावे. ऐसे सात कपरौटी करे और सुखावे ॥ ९२ ॥

शुद्ध गंधक मिलाके कजली करके आतशी काँचकी शीशीमें भरे ॥ ८५ ॥

मृद्वस्त्रैः कुट्टितैः कूपीं लेपयेच्छोषयेत्ततः ॥ स्थापयेद्वालुकायंत्रे वह्निं दद्याच्छनैः शनैः ॥ ८६ ॥

टीका–फिर शीशीके ऊपर मृत्तिका और वस्त्र खूब कूटके लेप करके सुखावे. फिर वालुका यंत्रमे मंद मंद आंच देवे ॥ ८६ ॥

चतुर्थस्त्रावधिं पश्चात्स्वांगशीतां हि कूपिकाम् ॥ स्फोटयेदूर्ध्वसंलग्नं सिंदूराभं रसं नयेत् ॥ ८७ ॥

टीका–ऐसे चार दिनरात निरंतर आंच देवे फिर आपसे ठंढे होनेपर सीसीको फोड़के उसके ऊपरके भागमें लगा रससिंदूर ले लेवे ॥ ८७ ॥

अथान्यः उत्तमः प्रकारः ॥ पारदं गंधकं तुल्यं गंधार्धं नवसादरम् ॥ कज्जलीं चित्रककाथैस्तथोन्मत्तदलांबुना ॥ ८८ ॥ कुमारीस्वरसैर्घस्रं पृथक्कृत्वा विमर्दयेत् ॥ काचकूप्यां विनिस्थाप्य लेपयेत्कूपिकां प्रिये ८९

टीका–अब दूसरी उत्तम विधि–पारा, गंधक सम

भाग और गंधकसे आधा नवसादर इनकी कज्जली करे. तिस कज्जलीको चित्रकके काढेमें और धतूरेके पत्रके रसमें और घीकुमारिके रसमें न्यारा न्यारा एक एक दिन मर्दन करे. फिर कांचकी शीशीमें भरके ऊपर लेप चढावे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

तद्विधानं प्रवक्ष्यामि तच्छृणु त्वं समाहिता ॥ खटिकां लोहकिट्टं च चूर्णयेद्वस्त्रगालितम् ॥ ९० ॥

टीका—लेपका विधान कहतेहैं सो तुम सुनो. खड़ी और लोहका कीट सूक्ष्म चूरण कर कपड़ेमें छाने ९०

लोहकिट्टचतुर्थांशं चूर्णं गोधूमसंभवम् ॥ दिनैकं मर्दयेत्सर्वं सवस्त्रं लेपयेच्च ताम् ॥ ९१ ॥

टीका—और लोहकीटका चौथा भाग गेहूंका आटा मिलाके एक दिन मर्दन करे फिर वस्त्रमें लगाके सीसीमें लेप लगावे ॥ ९१ ॥

कूपिकां शोषयेत्पश्चाल्लेपयेच्छोषयेत्ततः ॥ सप्तवारं प्रलिप्यैवं शोषयेत्तां निधापयेत् ॥ ९२ ॥

टीका—फिर शीशी सुखाके फिर लगावे. ऐसे सात कपरौटी करे और सुखावे ॥ ९२ ॥

वालुकायंत्रके दद्यादग्निं यामचतुष्टयम् ॥ स्वांगशीतां तु संस्फोटय चोर्ध्वलग्नं रसं नयेत् ॥ ९३ ॥

टीका–फिर वालुकायंत्रमें चार प्रहरकी अग्नि देवे, फिर आपसे शीतल भए पीछे सीसीको फोड़के उपर लगा रस ले लेवे ॥ ९३ ॥

सुरक्तं रससिंदूरं ख्यातं वैद्यवरैः प्रिये॥अनुपानयुतं दत्तं रोगजालविनाशनम् ॥९४॥

टीका–सुंदर लालवरण लोकप्रसिद्ध रससिंदूर अनुपानयुक्त सेवन करनेसे रोगसमूहको नाशकारक है ॥ ९४ ॥

अथ गुणाः ॥ हरति च रससिंदूरं कासश्वासाग्निमांद्यमेहगणान् ॥ रक्तविकारं कृच्छ्रं ज्वरादिरोगान्यथानुपानयुतम् ॥ ९५ ॥

टीका–अथ गुण–कास, श्वास, मंदाग्नि, प्रमेह, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र और भी ज्वरादिक रोगोंको अनुपानसे युक्त रससिंदूर हरता है ॥ ९५ ॥

अथ दोषस्तच्छांतिश्च ॥ रससिंदूरमशुद्धाद्रसाद्धि जातं पारदवद्रोगान् ॥ कुर्याच्चेत्तच्छांत्यै घृतमरिचरजः पिबेत्सप्तदिनम् ॥ ९६ ॥

टीका—अथ दोष और दोषकी शांति—जो अशुद्ध पारेसे रससिंदूर बनता है सो पाराकी तरह रोग करता है. उसकी शांतिके वास्ते कालीमिर्च और घृत सात दिन पीवे ॥ ९६ ॥

अथानुपानम् ॥ गुंजादिमानमारभ्य चतुर्गुंजावधि प्रिये ॥ दद्यात्कालवयोवह्निदेशान् दृष्ट्वामयं बलम् ॥ ९७ ॥

टीका—अथ अनुपान—एक रत्तीसे चार रत्तीतक रससिंदूर काल, अवस्था, अग्नि, देश, रोग, बल, देखके देना ॥ ९७ ॥

पिप्पलीमधुसंयुक्तं वातमेहनिवारणम् ॥ सितोपलावरायुक्तं पित्तमेहं वरांगने ॥ ९८ ॥

टीका—हे वरांगने! वातप्रमेहमें मधुपिप्पली साथ पित्तप्रमेहमें त्रिफलाचूर्ण और मिश्रीसाथ देना ।९८।

भार्ङ्गीत्र्यूषणमाक्षाकः कसनश्वासशूलनुत् ॥ सितारात्रिसमायुक्तं रक्तदोषं विनाशयेत् ॥ ९९ ॥

टीका—भारंगी, सूंठ, मिर्च, पीपल, मधुसंग कास, श्वास, शूलरोगमें और रक्तदोषमें हलदी शक्कर संयुक्त ॥ ९९ ॥

कामलापांडुमंदाग्नीन्वरात्र्यूषणयुग्जयेत् ॥ यथा विष्णुः श्रियायुक्तो हृदिस्थो भक्तपातकान् ॥ १०० ॥

टीका–जैसा हृदयमें रहनेवाला लक्ष्मीके साथ विष्णु भक्तोंके पातकोंको हरता है वैसा कामला, पांडु, मंदाग्नि इन रोगोंको त्रिफला और त्रिकटुके चूर्णमें लेवे तो हरता है ॥ १०० ॥

हृद्रोगं बद्धकोष्ठं च वह्निमांद्यादिकान् गदान् ॥ जयेच्चित्रकपांचालीशिवासौवर्चलान्वितम् ॥ १ ॥

टीका–हृदयरोग, बद्धकोष्ठ, मंदाग्नि इनमें चित्रक, पीपल, हरड़. संचलवण संग देना ॥ १ ॥

शिलाजतुसितैलाभिर्मूत्रकृच्छ्रापनुद्भवेत् सौवर्चल वरायुक्तं रेचयेन्नवयौवने ॥ २ ॥

टीका–हे तरुणि ! शिला जतु, शकर, इलायची इनसंग मूत्रकृच्छ्र रोगमें देवे. त्रिफला और संचल लवणसंग लेनेसे रेचन करे ॥ २ ॥

जातीपत्रीलवंगाफू–भंगापिप्पलिकुंकुमैः ॥ कर्पूरेण च संयुक्तं धातुवृद्धिकरं परम् ॥ ३ ॥

टीका-धातुवृद्धिके वास्ते जायपत्री, लवंग, अफीम, भांग, पीपली, केसर और कपूर साथ लेवे ३

लवंगरुच्यकशिवायुक्तं सर्वज्वरापहम्॥प्रिये भंगाजमोदाभ्यां छर्दिरोगप्रणाशनम् ॥ ४ ॥

टीका-सर्व ज्वरमें लवंग, संचल, हरड़युक्त. छर्दिरोगमें भांग और अजमोदासंग देना ॥ ४ ॥

लवंगकुंकुमयुते नागवल्लीदलाद्रवे॥ वीटकेवापि कूष्मांड चूर्णे स्याद्धातुवर्धनम् ५

टीका-धातुवृद्धिके वास्ते पानकेबीड़ेमें रससिंदूर, लवंग, केसर देवे. वा कूष्मांडचूर्णसाथ देवे ॥ ५॥

गुडपर्पटसंयुक्तं कृमीन् कोष्ठगतान् जयेत्॥ लवंगभंगाफूकैश्च सर्वातीसारनुत् प्रिये ॥ ६ ॥

टीका-पेटके कीड़े जानेके वास्ते पित्तपापड़ा, और गुड़में दे. सर्व अतिसारमें लवंग, भांग, अफीममेंदेना६

दीप्यसौवर्चलोपेतं वह्निमांद्यापहं परम् ॥ पौष्टिकेऽप्यमृतासत्वसंयुतं पुष्टिकारकम् ॥ ७ ॥

टीका-अग्निमांद्यमें अजमोद और संचललोनसाथ दे. पुष्टिके गिलोयके सत्वमें देवे ॥ ७ ॥

वातं माक्षिकपांचालीचूर्णयुक्तं विनिर्जयेत् ॥ सितोपलायुतं पित्तं जयेदंबुजलोचने ॥ ८ ॥

टीका-हे कमलनयने ! वातरोगमें पीपली मधु संग दे पित्तमें मिश्रीसंग दे ॥ ८ ॥

त्रिकट्वग्नियुतं हन्यात्कफरोगं सुदारुणम् ॥ अन्यान् रोगान् जयेद्युक्त्या यथा योग्यानुपानकैः ॥ ९ ॥

टीका-कफरोगमें सोंठ, मिरच, पीपल, चित्रक संग और रोगोंको अपनी बुद्धिसे अनुपानयुक्त करे

पथ्यं पारदवत्सर्वं सेवयेद्धै हरिं स्मरन्॥ नवकंजविशालाक्षि प्रिये पीनपयोधरे ११

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यां रसानुपानकथने तृतीया वीचिः ॥ ३ ॥

टीका-इसका पथ्य पारेके तुल्य है और इसव हरिका स्मरण करते करते सेवन करे ॥ ११० ॥

इति श्रीमद्रमणविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणी-टीकायां नौकाख्यायां तृतीयः कोष्ठकः ॥ ३ ॥

अथ गंधकः। तत्र भेदाः॥ श्वेतो रक्तस्तथा पीतः कृष्णो गंधश्चतुर्विधः॥ क्रमाद्विप्रादिकैर्वर्णैः श्वेतः स्याद्व्रणलेपने ॥ १ ॥

टीका—अथ गंधकविधि—तत्र गंधकभेद. श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण गंधक चार प्रकारका है. श्वेत ब्राह्मण, रक्त क्षत्रिय, पीत वैश्य, कृष्ण शूद्र है. तहां श्वेत घावमें लेपने योग्य है॥ १॥

रक्तः स्वर्णक्रियासूक्तः पीतवर्णो रसायने ॥ कृष्णः सर्वक्रियासूक्तो जनैरप्राप्य एव सः ॥ २ ॥

टीका—रक्त स्वर्णक्रियामें, पीत रसायनमें, रसायन उनको कहते हैं, जिससे बुद्धिबल बढे और जराव्याधिका नाश हो. कृष्ण सर्वकार्ययोग्य है परंतु अप्राप्य है॥ २॥

अथ शुद्धिः॥ लोहपात्रे विनिक्षिप्य गंधकं गोघृतं समम्॥ द्रुते गंधे तु गोक्षीरे क्षिप्तः शुध्यति गंधकः ॥ ३ ॥

टीका—अथ गंधक शुद्धि.—लोहके पात्रमें गंधक और घृत समभाग मिलाके मंद अग्नीसे गरम करे जब पतला हो गोदुग्धमें बुझावे तो शुद्ध हो॥ ३॥

अथानुपानम्॥ माषकाद्दशमाषांतं शुद्धं

गंधं निषेवयेत् ॥ शिरोव्रणे शिरःशूले लेपयेद्यवकांजिकैः ॥ ४ ॥

टीका–एक मासेसे दशमासेतक शुद्ध गंधक सेवन करना चाहिये. मस्तकमें जब व्रण हो वा शूल हो तो कांजीसंग लेपन करना ॥ ४ ॥

नेत्ररोगं वरायुक्तो गोघृतेन व्रणं जयेत् ॥ मधुनाज्येन वा हन्यादंजितः शुक्रमाक्षिकम् ॥ ५ ॥ आक्षिकं शुक्रं (फूली) ॥

टीका–नेत्ररोगमें त्रिफलासंग खावे. व्रणरोगमें घृतयुक्त ले. नेत्रकी फूलीपर मधुमें अथवा घृतमें अंजन करे ॥ ५ ॥

सवह्निजगवाज्येन पिप्पलीगोघृतेन वा ॥ जयेत्कासं तथा श्वासं वृहतीफलसर्पिषा ॥ ६ ॥

टीका–कासमें गोघृत मिर्चसंग, अथवा गोघृत पीपलसंग, श्वासमें भटकटैयाका फल जिसको भूरिंगणी भी कहते हैं उसके फल और घृतसाथ ॥६॥

मगधामधुसंयुक्तः स्वरभंगं जयेदयम् ॥ पार्श्वशूलं तथा नागवल्लिनीरेण गंधकः ॥ ७ ॥

टीका–स्वरभंगमें मधुपिप्पली साथ पार्श्वशूल अर्थात् पशूलीकी शूलमें नागलिके रसयुक्त देवे ७

विषूचीं निंबुनीरेण प्रमेहं सगुडो जयेत् ॥ धात्रीफलरजोयुक्तो गंधकोऽयमजीर्णहा ॥ ८ ॥

टीका–विषूचिकारोगमें निंबूके रसमें, प्रमेहमें गुड़साथ अजीर्णमें आमलाके चूर्णसाथ देवे ॥ ८ ॥

पामार्दीस्तिलतैलेन ग्रहणीं विश्वसर्पिषा ॥ भक्षितो निंबपंचाङ्गैः कुष्ठं कष्टतरं दहेत् ॥ ९ ॥

टीका–पामा अर्थात् खजुलीमें तिलके तेलमें, संग्रहणीमें सोंठि घृतसाथ, कुष्ठ रोगमें नींबूके पंचांगके साथ देवे ॥ ९ ॥

वातरोगान् जयेद्गंधः साज्येन स्वर सांबुना ॥ पित्तरोगान् गवाज्येन गुडविश्वयुतः कफम् ॥ १० ॥

टीका–वातरोगमें तुलसीका रस और घृतसे, पित्तरोगमें गोघृतसाथ, कफमें गुड़ सोंठसाथ देवे १०

वाज्यजामूत्रगोक्षीरघृतशुंठियुतं वल्लिम् ॥ टंकमारभ्य कर्षांतमब्दैकं भक्षयेद्धि यः ॥ ११ ॥

टीका—घोड़ेका और बकरीका मूत्र, गौका दूध, घृत, सोंठि इनके साथ एक टंकसे लेके तोलापर्यंत एक वर्ष सेवन करे ॥ ११ ॥

जराव्याधिविनिर्मुक्तः सजीवेच्छरदां शतम् ॥ वरामार्कवचूर्णेन सेवेदब्दं जरां जयेत् ॥ १२ ॥

टीका—तो जराव्याधिसे रहित होके सौ वर्ष जीवे और त्रिफला और भंगराके चूर्णमें एक वर्ष लेवे तो वृद्धापन मिटे ॥ १२ ॥

कुष्ठे विषविकारे च निर्गुंडीस्वरसान्विताम् ॥ रसगंधभवां सम्यक्कज्जलीं लेपयेत्सुधीः ॥ १३ ॥

टीका—कुष्ठमें और विषविकारमें निर्गुंडीके रससंग पारा, गंधककी कजली लेप करे ॥ १३ ॥

बलिं पंचपलं शुद्धं मार्कवस्वरसैः समैः ॥ घृष्टशुष्कस्य तस्यार्धं शिवाचूर्णं विमिश्रयेत् ॥ १४ ॥

टीका—गंधक बीस तोला, भंगरेका रस बीस तोला, खरल कर सुखावे और उसका आधा हरड़का चूर्ण मिलावे ॥ १४ ॥

मासयुग्मं निषेवेत माक्षिकाज्यवि-
मिश्रितम् ॥ वार्धक्येन विनिर्मुक्तः
शक्तिमान्वीर्यवान्भवेत् ॥ १५ ॥

टीका–फिर घृत, मधुसाथ दो महीना सेवे तो
वृद्धपनासे छूटके शक्तिवंत और वीर्यवंत होवे ॥१५॥

कुष्ठं तैलयुतं भुक्त्वा गंधकं चानुसेच-
येत् ॥ अंगे शीततरं नीरं जयेदेव न
चान्यथा ॥ १६ ॥

टीका–कुष्ठरोगी तेल साथ गंधक खाके शरीरपर-
ठंढा पानी सींचे तो आराम हो ॥ १६ ॥

विकारो यदि जायेत गंधकाचेत्तदा
पिबेत् ॥ गोघृतेनान्वितं क्षीरं सुखी
स्यादपि मानुषः ॥ १७ ॥

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचिता-
यामनुपानतरंगिण्यां गंधानुपान-
कथने चतुर्थी वीचिः ॥४॥

टीका–जो गंधकसे विकार हो तो मनुष्य
गोघृत दूधसंग पीवे तो सुखीहोवे ॥ १७ ॥

इति श्रीरमणविहारीकृतामनु० नौका-
ख्यायां चतुर्थः कोष्टकः ॥ ४ ॥

अथ केषांचिदुपरसानां विधिः ।

तत्र तावल्लोकनाथो रसः ।

पारदं गंधकं शुद्धं समभागं विमर्दयेत् ॥ टंकणं पारदादर्धं वराटास्युश्चतुर्गुणाः १

टीका—अथ उपरसविधि—तहां पहले लोकनाथरस लिखते हैं. शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक दोनों समभाग लेके कजली करे और पारासे आधा टंकण क्षारले और पारेसे चौगुणी कौडी लेवे ॥ १ ॥

कज्जलीं तां विनिक्षिप्य वराटेषु प्रयत्नतः॥ टंकणं पेषयेत्सम्यग्गोदुग्धेन विमुद्रयेत् ॥२॥ वराटानां मुखं पश्चाच्छोषयेदातपं विना ॥ गंधादष्टगुणे कंबोश्चूर्णे सर्वं विमुद्रयेत् ॥ ३ ॥

टीका—उस कज्जलीको कौड़ियोंमें भरके टंकणको गोदुग्धमें घोटके कौड़ियोंके मुखपर मुद्रा देवे फिर कौड़ियोंका मुख छायामें सुखावे फिर गंधकसे आठगुणे शंखके चूर्णमें उन कौड़ियोंको रखके मुद्रा करे ॥ २ ॥ ३ ॥

शरावसंपुटे सम्यक् पाचयेत्स्वांगशीतलम् ॥ पेषयित्वा प्रयत्नेन स्थापयेत्काचभाजने ॥ ४ ॥

टीका—शरावसंपुटमें गजपुटकी आंच देवे. स्वांगशीतल भये पीछे पीसके कांचकी सीसीमें भर राखे ४

अथानुपानम् ॥ लोकनाथरसं बाले गृहीत्वावल्लकद्वयम् ॥ विंशन्मरिचचूर्णेन युक्तं दत्वा वरांगने ॥ ५॥

टीका—अथ अनुपान—हे वरांगने ! छः रत्ती लोकनाथरसमें वीस मिरचका चूर्ण मिलावे और रोगीका बल देखके एक रत्तीसे छःतक देवे. विना विचारे और विना गुरु कोई रस मात्रा देगा तो पापका भागी होगा ॥ ५ ॥

प्रतिरोगेऽनुपानानि पृथक्कृत्वा वदाम्यहम् ॥ सर्पिषा वातिकं रोगं नवनीतेन पैत्तिकम् ॥ ६ ॥

टीका—अब न्यारे २ रोगोंका न्यार अनुपान कहता हूं. वातरोगमें घीसे, पित्तमें मक्खनसे देवे ६

कफामयं निहंत्येव माक्षिकेण नितंबिनि ॥ यथा हि सुरतो हन्यात्कफरोगानशेषतः ॥ ७ ॥

टीका—हे नितंबोंवाली ! कफरोगमें मधुयुक्त देना, यह मैथुनके जैसे सब कफ रोगोंको नाश करेगा ॥७॥

धान्याकं निस्तुषं कृत्वा भर्जयित्वा सुपेषयेत् ॥ तच्चूर्णेन सिताढ्येन लोकनाथोऽरुचिं जयेत् ॥ ८ ॥

टीका—धनियांको छिलका दूर करके सेके, फिर पीसके शक्कर मिलाय उसमें लोकनाथ लेवे तो अरुचि जावे ॥ ८ ॥

धान्यच्छिन्नाकषायेण ज्वरं हन्यादसंशयम् ॥ मधुपिप्पलिसंयुक्तो लोकेशो वा जयेज्ज्वरम् ॥ ९ ॥

टीका—धनियाँ और गिलोयके काढ़ेमें लेवे तो ज्वर जावे. अथवा मधुपिप्पलीसे लेवे ॥ ९ ॥

रक्तपित्तं कफं कासं श्वासं च स्वरवैकृतिम् ॥ वृषवालकषायेण सितामधुयुजा हरेत् ॥ १० ॥

टीका—रक्तपित्त, कफ, कास, श्वास, स्वरभंग इनरोगोंके नाशके वास्ते अरूसा और सुगंधवलाके काढ़ेमें मधु और मिश्रीयुक्त लेवे ॥ १० ॥

अनिद्रतामतीसारं ग्रहणीमग्निमांद्यताम् ॥ भर्जितेपञ्जयाचूर्णमाक्षिकाभ्यां विनिर्जयेत् ॥ ११ ॥

टीका-जो निद्रा न आती हो तो और अतीसार, संग्रहणी, मंदाग्नि इन रोगोंमें किंचित् अग्निमें सेंकी भई भांग और मधुसंग लेवे ॥ ११ ॥

संचलाभयाकणारजोन्वितं निषेवयेत् ॥ लोकनाथकं जलं पिबेत्कवोष्णकं ततः ॥ शूलमाशु संजयेदजीर्णमेव तत्क्षणम् ॥ मंजुकोकिलस्वरे शरत्सरोजलोचने ॥१२

टीका-हे कोकिलके सदृश स्वरवाली ! हे कमलनेत्रे ! जो संचल लवण, हरड़, पीपल, इनके चूर्णमें लेके किंचित् गरम जल पीवे तो शूल और अजीर्णको एक क्षणमें जीते ॥ १२ ॥

प्लीहानं छर्दिमर्शांसि रक्तपित्तं विनिर्जयेत् ॥ दाडिमीफलनीरेण लोकनाथं निषेवयन् ॥ १३ ॥

टीका-प्लीहा, छर्दि, अर्श, रक्तपित्त इन रोगोंमें अनार जिसे दाड़िम भी कहते हैं उसके फलके रसमें लेवे १३

घृष्ट्वा दूर्वारसैः सार्धं हारिणं शृंगकं जयेत् ॥ लोकनाथयुतं नस्ये दत्त्वा रक्तस्रुतिं न सः ॥ १४ ॥

टीका-जो नासिकासे रक्त गिरता हो तो दूब
ससे गुजराती द्रो कहते हैं उसके रसमें हरिणका
ंग घिसके और लोकनाथ रस मिलाके नास देदे
। रक्त गिरना बंद हो ॥ १४ ॥

वर्हभस्म कणा कोलमज्जाचूर्णं सिता
मधु ॥ लोकनाथयुतं लीढ्वा छर्दिं
हिक्कां च संजयेत् ॥ १५ ॥

टीका-छर्दि और हिचकी रोगमें मोरपंखकी भस्म
पिपल बेरकी मींगी अर्थात् बेरकी गुठलीका मगज,
मिश्री, मधु, इनके संग लोकनाथ रस लेवे ॥ १५ ॥

तेन तेनानुपानेन युक्त्या तं तं गदं
जयेत् ॥ लोकनाथेन सद्वैद्यः प्रायश्चि-
त्तैरघानिव ॥ १६ ॥

टीका-और भी रोग रोगके अनुसार अनुपान-
युक्त करके वैद्य रोगीको देवे तो रोग छूट जाता है
जैसे प्रायश्चित्तोंसे सब पातक छूटता है ॥ १६ ॥

इति लोकनाथरसः ।

अथ वाजिवर्मा रसः ॥ गंधकं पारदं
त्र्यूषणं टंकणं दंतिबीजं वरां विष्णुबीजं
विषम् ॥ मर्दयेद्भृंगराजस्य नीरैर्दिनं रक्ति-
कैका वटी वाजिवर्मा रसः ॥ १७ ॥

टीका–अथ वाजिवर्मारसः–गंधक, पारा, सोंठ, मिर्च, पीपल, टंकण, जमालगोटा, हरड़, बहेड़ा, आमला, हरिताल, वच्छनाग इन सबका सूक्ष्म चूर्ण भांगरेके रसमें एक दिन मर्दन करके एक रत्ती-प्रमाण गोली करे. यह वाजिवर्मा रस है ॥ १७ ॥

अथानुपानम् ॥ वटीमेकां नरः खादे-द्वे वा कंजविलोचने ॥ पथ्ययुक्तो गदं हन्याद्यथा रोगानुपानतः ॥ १८ ॥

टीका–अथ इनके अनुपान–हे कमलनयने! एक अथवा दो गोली रोग बल देखके अनुपानसे दे और पथ्यसे रहे तो रोग मिटे ॥ १८ ॥

वातशूलं क्षयं कासं श्वासं मूलकनी-रतः ॥ हंति वा शृंगवेरांबु पिप्पली-मधुतः प्रिये ॥ १९ ॥

टीका–वातशूल, क्षय, कास, श्वास इनमें मूलीके पत्रके रसमें वा आदेकारस पीपल मधुयुक्त देवे॥१९॥

वलीपलितरोगघ्नो वाजिवर्मा समा-क्षिकः ॥ शिग्रुमूलांबुगोसर्पिर्युतः शूलं ज्वरं जयेत् २ २० ॥

टीका–वलीपलितमें मधुयुक्त, शूल और ज्वरमें

सहिंजनकी जड़का रस और गौके घृतयुक्त सहँजनको सेगटा भी कहते हैं ॥ २० ॥

मस्तुना जीर्णकं शीतज्वरमंबुजबीजकैः ॥ पुनर्नवायुतः पांडुं तंडुलांबुयुतो विषम् ॥ २१ ॥

टीका—अजीर्णमें दहीके पानीसे, शीतज्वरमें कमलके बीजसंयुक्त, पांडुमें पुनर्नवायुक्त, विषमें चावलके धोवनसे ॥ २१ ॥

तिलपर्णीरसैरक्ष्णोरंजितो तद्गदापहः ॥ शर्कराजाजिसंयुक्तो ज्वरं पित्तभवं जयेत् ॥ २२॥

टीका—नेत्ररोगमें तिलपर्णीके रसमें अंजन करै पित्तज्वरमें शक्कर जीरासंयुक्त देना ॥ २२ ॥

काथेनास्थिगतं वातं देवकाष्ठवचारुजाम् ॥ जातीफलान्वितोऽर्शांसि वातशूलं कटुत्रिकैः ॥ २३ ॥

टीका—अस्थिगत वातमें देवदारु, वच, कूटके काढ़ेमें. कूटको उपलेटा भी कहते हैं. अर्शरोगमें जायफलसाथ, वातशूलमें त्रिकटुसाथ ॥ २३ ॥

गोमूत्रेण नरः खादन्पुरुषत्वमवा-

प्नुयात् ॥ पुत्रजीवारसैर्बाले वंध्या-
स्यादेव गर्भिणी ॥ २४ ॥

टीका–गोमूत्रसे पुरुषत्वप्राप्ति हो. पुत्रजीवा जिसे पतिजिया भी कहते हैं उसके रसमें वांझभी गाभिन हो ॥ २४ ॥

लिप्तः सर्पविषं दंशे हंति निंबुरसे-
स्तुवा ॥ शिरीषस्वरसैर्वाज्येनाब्द-
नादरसैर्हि वा ॥ २५ ॥

टीका–जहां सर्पने काटा हो उस जगहपर निंबूके रसमें शिरीषके रसमें वा घृतमें वा चौलाईके रसमें विसके लेप करे ॥ २५ ॥

वचादीप्ययुतो हंति कटिपीडां मरु-
द्भवाम् ॥ कसनं श्वसनं हंति मधु-
वासारसान्वितः ॥ २६ ॥

टीका–जो वायुसे कमरमें दर्द हो तो वच और अजमोदासाथ लेवे. कास श्वासमें अरूसेका रस और अजमोदासाथ लेवे. कास श्वासमें अरूसेका रस और मधुमें लेवे ॥ २६ ॥

ज्वरं हंति विशालाक्षि सुरसास्वर-
सांजितः ॥ तथा नित्यज्वरं हंति
भक्षितः कन्यकांबुना ॥ २७ ॥

टीका–हे बड़े नेत्रोंवाली, तुलसीके रससे अंज करनेसे ज्वर जावे. कुमारीपाठके रससे खावे त नित्यज्वर जावे ॥ २७ ॥

नारीदुग्धेन नक्तांध्यमूर्ध्वश्वासं वरा- युतः ॥ हंति दाहयुतं पित्तज्वरमाम- लकान्वितः ॥ २८ ॥

टीका–स्त्रीके दूधसे अंजन करे तो रतौंधी जावे त्रिफलासंग खानेसे ऊर्ध्वश्वास जावे. आमलासुर देनेसे दाहयुक्त पित्तज्वर जावे ॥ २८ ॥

सेतिकाघृतसंयुक्तः सर्वशूलानि संजयेत् ॥ शिग्रुमूलांबुगोसर्पि- र्माक्षिकैर्वा विचक्षणे ॥ २९ ॥

टीका–हे ज्ञानवाली, सर्व शूलमें घृत और खुव जिसे सोवा भी कहते हैं उसके संग वा सहिजँनकी जड़का रस वा गौका घृत मधुयुक्त देवे ॥ २९ ॥

कर्णरोगशिरोव्याधिपीनसार्धावभेद- कान् ॥ जयेज्जातीफलेनायं वाजि- वर्मा रसोत्तमः ॥ ३० ॥

टीका–कर्णरोग, मस्तकरोग, पीनस, आधासीसी इनमें जायफलसंग देना ॥ ३० ॥

कन्यकातुलसीतोयमाक्षिकैः सूतिका-
गदम् ॥ दध्ना वा तु गवांमूत्रैरतीसारं
जयत्ययम् ॥ ३१ ॥

टीका-सूतिकारोगमें घीकुमारिका और तुलसीका रस मधुयुक्त देना. अतीसारमें दहीसे वा गोमूत्रसे देना ॥ ३१ ॥

तक्रतोयेन वा जातीफलेनांबुरुहे-
क्षणे ॥ अथवा महिषीमूत्रैर्जयेत्सं-
ग्रहणीगदम् ॥ ३२ ॥

टीका-हे कमललोचने, संग्रहणीमें छाँछ (मठा) जलसे [redacted] जायफलसे वा भैंसके मूत्रसे देवे ॥ ३२ ॥

कासमर्दरसैर्वापि टंकणेनाग्निमां-
द्यजित् ॥ तथा ब्राह्मरिसेनायं
बुद्धिदो बुद्धिमत्ययम् ॥ ३३ ॥

टीका-मंदाग्निमें कसौंदीके रसमें वा टंकणमें और ब्राह्मीके रसमें लेनेसे बुद्धि बढाता है ॥ ३३ ॥

तांबूलवीटकेनायं कांतिसंस्कारको
मतः ॥ सुधाक्षारयुतो गुल्मं निर्गु-
डीस्वरसेन वा ॥ ३४ ॥

टीका-पानके बीडेमें लेनेसे शरीरकी कांतिको करता है. गुल्ममें चूनाके संग वा निर्गुंडीके रसमें ॥ ३४ ॥

यवानिकायुतो हंति सन्निपातं सुदारुणम् ॥ वातामयमजाक्षीरैरथवा गोघृतेन च ॥ ३५ ॥

टीका-सन्निपातमें अजमायनसंग, वातरोगमें बकरीके दूधसे वा घृतसे देना ॥ ३५ ॥

सर्ववातामयान्वायं मार्कवस्वरसैर्जयेत् ॥ वाजमोदाजयायुक्तो वरायुक्तोऽथवा प्रिये ॥ ३६ ॥

टीका-अथवा सर्व वातरोगमें भांगरेके रससे वा अजमोदा और भांगसे वा त्रिफलासे ॥ ३६ ॥

वाश्वगंधारजःक्षौद्रसंयुतः सर्ववातजित् ॥ विष्णुक्रांताजटायुक्तो धनुर्वातामयं जयेत् ॥ ३७ ॥

टीका-वा असगंध और मधुके साथ लेवे तो सब रोग दूर हों धनुर्वातमें विष्णुक्रांताके मूलसंग देना ३७

कूष्मांडस्वरसैर्मेहं गोदध्ना वा विनिर्जयेत् ॥ गोक्षुरकरजोयुक्तो धातुदोषं निवारयेत् ॥ ३८ ॥

टीका-प्रमेहमें भूरा कुह्रड़ाके रससंग, वा गौके दहीसंग. धातुदोषमें गुखरूके चूनसंग देना ॥ ३८ ॥

वर्धयेत्सर्पिषा शुक्रं कृच्छ्रं पूगरसैर्जयेत् ॥ रेचयेरंडतैलेन विद्रधिं गुडयुक् तथा ॥ ३९ ॥

टीका–घृतसंग खानेसे धातुवृद्धि करे, मूत्रकृच्छ्रमें सुपारीके रससे वा काढ़ेसे दे. एरंडतेलयुक्त लेनेसे रेचन हो. गुड़संग लेवे तो विद्रधिरोग जावे ॥ ३९ ॥

आर्द्रकस्वरसैर्लिप्तो वृश्चिकस्य विषं जयेत् ॥ स्वेदं भृंगरसैः सार्धं चंपानीरैर्विगंधताम् ॥ ४० ॥

टीका–जहां विच्छूने डंक मारा हो वहां आदेके रसमें घिसके लेप करे. पसीना जादा आता हो तो भांगरेके रससे लेना. देहकी दुर्गंधि मिटानेको चंपाके रससे देना ॥ ४० ॥

तक्रमेहमजाक्षीरैः पित्तं शिवासितान्वितः ॥ अंजितो निंबुतोयेन भूतावेशनिवारणः ॥ ४१ ॥

टीका–तक्रप्रमेहमें बकरीके दूधयुक्त, पित्तरोगमें आमला शक्करसंग, निंबूके रसमें अंजन करनेसे भूत शरीरमें आया होवे तो जावे ॥ ४१ ॥

त्रिफलास्नुतैलेन संजयेदुदरामयान् ॥

काकमाचीरसैर्वापि नात्र कार्या विचारणा ॥ ४२ ॥

टीका—उदरविकारमें त्रिफलाका चूरण और एरंडके तेलसंग, अथवा मकोयके रससंग देना ॥४२॥

मार्कवस्वरसैः शोफं वा पलांडुरसैर्जयेत् ॥ करंजत्वग्रसैरेवं कृमिरोगं न संशयः ॥ ४३ ॥

टीका—शोफरोगमें भांगरेके रससंग वा पियाजके रससंग, कृमिरोगमें करंजकी छालीके रससंग देना ४३

शक्तिकृन्नवकंजाक्षि नागवल्लीदलांबुना ॥ अजाजीक्षौद्रसंयुक्तउष्णवातविघातकः ॥ ४४ ॥

टीका—पानके रसमें लेनेसे शक्ति बढाता है. उष्णवातमें जीरा और मधुसंग देना ॥ ४४ ॥

वीटकेन युतः स्वर्यः स्वरजिद्वरकोकिले ॥ आमशूलं सुरायुक्तः पामां गोमूत्रलेपितः ॥ ४५ ॥

टीका—स्वरभंगमें पानले वीड़ेके साथ, आमशूलमें मरोड़फलीसंग, खाजमें गोमूत्रयुक्त लेप करे॥४५॥

लेपितो भक्षितो लूताविषं भृंगरसा-

न्वितः ॥ तथा पल्लीविषं हंति भक्षितो लेपितोंऽबुना ॥ ४६ ॥

टीका—लूताके विषमें भांगराके रससे खावे और लेप भी करे. छिपकलीके विषमें पानीसे लेप करे और खावे ॥ ४६ ॥

उन्मत्तश्वविषं हंति मेघनादरसैरयम् ॥ गोमूत्रेण गुडूच्या वा कुष्ठं कष्टतरं तथा ॥ ४७ ॥

टीका—उन्मत्त कुत्तेके काटनेसे जो विष होता है उसमें चौराईके रसयुक्त, कुष्ठमें गोमूत्रसे वा गिलोयसे देना ॥ ४७ ॥

न मे रोगो भवेदेवं यस्येच्छास्ति वरांगने ॥ गुटीमेकां तथार्धां वा प्रत्यहं सेवयेद्धि सः ॥ ४८ ॥

टीका—हे वरांगने, जिसके ऐसी इच्छा हो कि, हमारे कोई रोग न हो. सो इसकी गोली एक अथवा आधी नित्य सेवन करे ॥४८॥ इति अश्वमारिरसः ॥

अथाश्विनीकुमारः ॥ त्र्यूषणं फलत्रिकं च नागफेनकं विषं मागधीजटालवंगदंतिबीजतालकम्॥टंकणं च गंधकं रसं ८५

पिचुं प्रिये क्षीरमर्धप्रस्थकं गवां विशोपये-दये॥४९॥ मूत्रकं गवां विशोष्य भृंगराज-नीरकं शोषयेद्विघर्षयन्निरंतरं विबंधयेत् । वाजिमंत्रसन्निभां वटीमतीव सुंदराम-श्विनीकुमार इत्ययं रसो वरांगने ॥५०॥

टीका—अथ अश्विनीकुमाररसविधिः—हे वरांगने ! सोंठ, मिर्च, पिपल, हरड, बहेडा, आमला, अफीम, बच्छनाग, पीपलामूल, लवंग, जमालगोटा, हरिताल, टंकण, गंधक, पारा, ये १५ औषध एक एक तोला चूर्ण करके वत्तीस तोला गोदुग्धमें खरल करे. फिर ३२ तोला गोमूत्रमें. फिर वत्तीस तोला भांगरेके रसमें खरल करके चना प्रमाण गोली बनावे. यह अश्विनीकुमार रस है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथानुपानम्॥पित्तमेहनाशनो निशायुतोऽश्विनीसुतः कृच्छ्रनाशनो यवानिकायुतो वरांगने॥पुंस्त्वसिद्धये हि माक्षिकान्वितं निषेवयेद्विश्वभेषजान्वितं निषेवयन् ज्वरं जयेत् ॥ ५१ ॥

टीका—अथ इसका अनुपान—पित्तप्रमेहमें हलदीसंग ले मूत्रकृच्छ्रको अजमायनसंग, नपुंसकपना दूर करनेको मधुसंग, ज्वरमें सोंठसंग ॥ ५१ ॥

प्रमेहं तुलसीनीरैस्त्वक्कोलेनास्यगंधताम् ॥ उष्णवातं जयेत्पर्णवीटकेन कणायुजा ॥ ५२ ॥

टीका–प्रमेहमें तुलसीपत्रके–रससंग, मुखदुर्गंधमें तजसंग, पानके बीड़ेमें पीपलयुक्त लेनेसे उष्णवात जाय ॥ ५२ ॥

कार्पासस्वरसैः खादन्नरः शीतज्वरं जयेत् ॥ सुरसांबुसिताशुंठीयुत एकांतरं ज्वरम् ॥ ५३ ॥

टीका–शीतज्वरमें कपासके रससंग, एकांतर ज्वरमें तुलसीका रस, शकर, सोंठयुक्त देना ॥५३॥

मरिचाजाजितुलसीरसैस्तार्तीयकं ज्वरम् ॥ भृंगराजरसैरेवं जयेच्चातुर्थिकं ज्वरम् ॥ ५४ ॥

टीका–तृतीयाज्वरमें मिर्चे, जीरा, तुलसीके र संग, चातुर्थिकज्वरमें भांगरेके रससंग देना ॥५४

पिप्पलीमूलसंयुक्तः प्रतिश्यायं मरुद्व्यथाम् ॥ निंबुनीरैः शिरोरोगे लेपयेच्चापि भक्षयेत् ॥ ५५ ॥

टीका–सरदी लगी हो जिसको जुखाम कहत

उसमें और वातरोगमें [illegible]
निंबूके रससंग खावे. [illegible]

प्लीहानमुदरं हंति विशालास्वरसा-
न्वितः ॥ जीर्णज्वरं सितायुक्तः का-
सं सैंधवसंयुतः ॥ ५६ ॥

टीका–प्लीहा और उदररोगमें इंद्रायणके रससंग लेवे. जीर्णज्वरमें शकरसंग. कासरोगमें सैंधवलवणसंग. ५६

जयेद्दै कक्षदुर्गंधं पीतकस्वरसा-
न्वितः ॥ मंडूकपर्णिकानीरैर्बुद्धि-
संवर्धनो मतः ॥ ५७ ॥

टीका–काँखकी दुर्गंधमें बबूलके रससंग बुद्धिवृद्धिके वास्ते ब्राह्मीके रससंग. ॥ ५७ ॥

जयेज्जातीफलकाथैरामरक्ताति-
सारकौ ॥ वाताममज्जसंयुक्तः
पुष्टिकृद्बलवर्द्धनः ॥ ५८ ॥

टीका–आमातिसार और रक्तातिसारमें जायफलके काढेमें, बदामके मगजसंग पुष्टिकारक और बल बढानेवाला है ॥ ५८ ॥

हरिद्राघृतसंयुक्तः सूतिकागदना-
शनः ॥ हीराबोल इति ख्यातस्ते-
नापीह विमिश्रितः ॥ ५९ ॥

टीका–सूतिकारोगमें हलदी और घृतमें और इसमें हीराबोल भी मिलावे ॥ ५९ ॥

भंगायुक्तो विशालाक्षि परपुष्टस्वर-प्रदः । शर्करासंयुतो हन्याज्ज्वर-मस्थिगतं प्रिये ॥ ६० ॥

टीका–हे बड़े नेत्रोंवाली, जो भंगयुक्त लेवे तो कोकिलाका ऐसा स्वर हो. हड्डीमें प्राप्त भए ज्वरमें शकरसंग लेना ॥ ६० ॥

कदलीकंदनीरेण शूलं कोष्ठगतं जयेत् ॥ अन्यरोगेषु वैद्येन देयो युक्त्यानुपानकैः ॥ ६१ ॥

टीका–कोष्ठगत शूलमें केलेकी जड़में रससंग और रोगोंमें वैद्य अपनी बुद्धिसे अनुपानयुक्त करे ६१.

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचिता-यामनुपानतरंगिण्यामुपरसानुपा-नकथने पंचमा वीचिः ॥ ५ ॥

इति श्रीवैद्यरसिकविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणी-टीकायां नौकाख्यायां पंचमः कोष्ठकः ॥ ५ ॥

अथ रत्नादिविधिः ।

तत्र वज्रविधिः । तस्य जातिभेदमादौ

शृणु ॥ वज्रं श्वेतं तथा रक्तं पीतं कृष्णं विदुर्बुधाः ॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः क्रमाद्वर्गैरिमे मताः ॥ १ ॥

टीका–अथ रत्नादिविधि–तहां हीराकी विधि, उसकी जातिभेद आदिमें सुनो, श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण ये चार भेद हीराके हैं, तहां श्वेत ब्राह्मण, रक्त वर्ण क्षत्रिय, पीत वैश्य और काला शूद्र है ॥ १ ॥

पुं स्त्री नपुंसकं तत्र विज्ञेयं लक्षणैरपि॥वृंताकसदृशारेखा विंदुहीना नराः स्मृताः २

टीका–तहां पुरुष, स्त्री, नपुंसक इसमें होते हैं; उनको लक्षणोंसे जानना. जो बैंगनसरीखा हो और रेखा बिंदु उसमें न हो सो नर है ॥ २ ॥

रेखाबिंदुसमायुक्ताः षट्कोणाः प्रमदामताः ॥ त्रिकोणाचिह्नसंयुक्ता दीर्घास्ते वै नपुंसकाः ॥ ३ ॥

टीका–जो रेखाबिंदुसंयुक्त छे कोणोंके हों वे स्त्री हैं जो त्रिकोण और रेखाबिंदुयुक्त हों वे नपुंसक हैं॥३॥

सर्वेषां पुरुषाः श्रेष्ठाः श्रेष्ठवंशवरांगने॥देहसिद्ध्यै स्मृता नारी नैव कांते नपुंसकः ४

टीका–सबमें पुरुष श्रेष्ठ है और देहकी सिद्धिके वास्ते स्त्री चाहिये, नपुंसक निरर्थक है ॥ ४ ॥

विप्रो रसायने राजा रोगनाशाय कीर्तितः ॥ वैश्यो वादादिसिद्ध्यर्थं वयस्तंभाय शूद्रकः ॥ ५ ॥

टीका—ब्राह्मण रसायनमें, क्षत्रिय रोगनाशमें वैश्य वादादिके सिद्धिके वास्ते है. आयुष्य दृढ करनेको शूद्र है ॥ ५ ॥

नारी नार्यै प्रदातव्या तथा षंढाय षंढकः। पुरुषो बलवानेष सर्वेषां हितकारकः ॥६॥

टीका—स्त्री स्त्रीको देना. नपुंसक नपुंसकको. पुरुष सर्वको हित है; क्योंकि, यह बलवान् है ॥६॥

अथ शोधनम् ॥ कंटकारीजटाकल्कगर्भे वज्रं विपाचयेत् ॥ कुलत्थकोद्रवक्काथैर्दोलायंत्रे दिनत्रयम् ॥७॥ शुद्धःस्याद्वज्रकश्चैनं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ एवं वैक्रांतकादीनि रत्नान्येव विशोधयेत् ॥ ८ ॥

टीका—अथ शोधनविधि—भटकटैया जिसे भूरिंगणी कहते हैं उसकी जड़की लुगदीमें धरके कोद्रव और कुलथीके काढ़ेमें दोलायंत्रसे तीन दिन पचावे तो शुद्ध हो ऐसेही वैक्रांत आदिक शोध लेने ।७।८।

अथ मारणम् ॥ रामान्दरूढकार्पास-

जटां पिष्ट्वा तदंबुना ॥ नागवल्लिजटां वापि तन्नीरेण विपेषयेत् ॥ ९ ॥ तत्कल्कमुद्रितं वज्रं पाचयेद्गजयंत्रके ॥ एवं सप्तपुटैर्वज्रं पंचत्वमुपजायते १०

टीका—अथ मारण—तीन वर्षकी कपासकी जड़ उसीके रसमें पीसे. अथवा नागबेलकी जड़ उसीके रसमें पीसे. उसी कल्कमें संपुट करके गजपुट दे, ऐसे सात पुटमें हीरा मरता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ गुणाः ॥ आयुष्यं सुखदं वल्यं रूपदं रोगनाशनम् ॥ अपमृत्युहरं प्रोक्तं रत्नं वज्रादिकं प्रिये ॥ ११ ॥

टीका—अथ गुण—हे प्रिये, हीरा आयुष्य बढ़ानेवाला है, सुख देनेवाला, बल देनेवाला, रूपका देनेवाला और रोगनाशक है और वज्रादिक सब अपमृत्युको भी हरनेवाला है ॥ ११ ॥

अथाशुद्धदोषाः ॥ दाहं पांडुगदं कुर्यात्किलासं पार्श्वशूलकम् ॥ वज्रादिकं रत्नगणं रोगजालमशुद्धकम् ॥ १२ ॥

टीका—अथ अशुद्धमें दोष—दाह, पांडु, किलास पार्श्वशूल इत्यादि रोगोंको अशुद्ध वज्रादिक करते हैं।१२।

अथ शांतिः ॥ गोदुग्धेन सितासर्पिर्माक्षिकं दिनसप्तकम् ॥ पिबेद्वज्रादिरत्नोत्थरोगजालप्रशांतये ॥ १३ ॥

टीका–अथ शांति-मधु, घृत, शकर, गोदुग्धसे सात दिन पीवे तो अशुद्ध रत्नादि दोष शांत होते हैं॥१३॥

अथानुपानम् ॥ कुष्ठनुत्खदिरक्काथसंयुता वज्रभूतिका ॥ माक्षिकार्द्रकनीराढ्या वातव्याधिप्रणाशिनी ॥ १४ ॥

टीका–अथ अनुपान–हीरेके भस्म खैरके काढेमें लेवे तो कुष्ठ जावे. आदेका रस और मधुसंग लेवे तो वातरोग जावे ॥ १४ ॥

पिप्पलीमरिचाढ्येन वृषनीरेण सेवितम् ॥ कासं श्वासं कफं हन्याद्वज्रभूतिरसंशयम् ॥ १५ ॥

टीका–पीपल और मिर्चके चूर्णयुक्त अरूसेके रसमें लेवे तो कास, श्वास, कफनाश करै ॥ १५ ॥

माक्षिकं घृतसंयुक्तं पुष्टिदं ललने मतम् ॥ सूतिरोगं गवां मूत्रैः स्वेदं शर्करयान्वितम् ॥ १६ ॥

टीका–हे प्रिये ! घृत मधुसंग पुष्टिकारक है. गोमूत्रयुक्त सूतिकारोगको हरे. शकरसाथ स्वेदको हरे॥१६

एवमन्यानि रत्नानि दत्त्वा रोगेषु बुद्धितः ॥ अनुपानानि संयोज्य ज्ञात्वा रोगबलाबलम् ॥ १७ ॥

टीका–ऐसेही और भी रत्न, रोगोंमें स्वबुद्धिसे दे. रोगका बलाबल देखके अनुपानयुक्त करे ॥ १७ ॥

अथ प्रवाले विशेषः ॥ शोधयेद्वज्रवच्चैनं मारयेच्चापि वज्रवत् ॥ अथवा त्वर्कजे क्षीरे मारयेत्कौक्कुटे पुटे ॥ १८ ॥

टीका–अथ प्रवालमें विशेष कहते हैं. शोधन मारण पूर्ववत् अथवा आकड़ेके दूधमें कुक्कुटपुट देवे तो भस्म होवे ॥ १८ ॥

अथानुपानम् ॥ कणामाक्षिकाभ्यां लिहेद्यः प्रवालं जयेच्छ्वासकासज्वरं जीर्णसंज्ञम् ॥ तथा कोष्ठगं मारुतं संजयेत भिषग्दुस्तरां चैव हिक्कां निहन्यात् ॥ १९ ॥

टीका–अथ अनुपान–जो मधुपीपलमें प्रवालको सेवे तो श्वास, कास, जीर्णज्वर, कोष्ठगतवात और हिक्का जीते ॥ १९ ॥

तिक्तातिक्तशिवाभिश्च ज्वरं हंत्येव दारुणम् ॥ पक्करंभाफलेनैव धातुक्षयहरं परम् २०

टीका–कुटकी, चिरायता, हरड़युक्त ज्वर हरे, पके केलाके फलमें धातुक्षयको हरता है ॥ २० ॥

सितादुग्धयुतं पित्तं गुल्कंदेन उरःक्षतम् ॥ गुल्कंदं मानुषैः ख्यातं नतु गीर्वाणभाषया ॥ २१ ॥

टीका–दूध शकरसे पित्तको, गुलकंदसे उरःक्षत रोगोंको जीते. गुलकंदशब्द प्राकृत भाषामें है, संस्कृत भाषामें नहीं ॥ २१ ॥

नागलतादलवीटकयुक्तं कार्श्यमुरोजघने विनिहन्यात् ॥ कृच्छ्रहरं त्रिफलामधुयुक्तं तंडुलजैश्च हिमैरथवा स्यात् ॥२२॥

टीका–पानके बीड़ामें दुर्बलताको हरता है. त्रिफला मधुयुक्त मूत्रकृच्छ्रको अथवा चावलके हिमयुक्त मूत्रकृच्छ्रको हरता है ॥ २२ ॥

धातुपुष्टिकरं कांते सिताघृतसमन्वितम् ॥ धारोष्णेन च दुग्धेन प्रदरं दारयत्यपि ॥ २३ ॥

टीका–हे कान्ते, घृत शकरयुक्त धातु पुष्ट करे. धारोष्ण दुग्धयुक्त प्रदर हरे ॥ २३ ॥

मधुशर्करया सुरसास्वरसैर्धयति मारुतमा-

शुकरोतिसुखम्॥अयि हंति निशांध्यमिदं सुरसारसमूषकविड्युतमंजनकम् २४॥

टीका–मधु, शक्कर, तुलसीरसयुक्त वातरोग हरे मूसेकी लेंडी अर्थात् उंदराकी मीगनी और तुलसीरसयुक्त अंजन करनेसे रतौंधी हरता है ॥ २४॥

सितोपलार्द्रकरसैः पित्तकासहरं परम्॥एवमन्येषु रोगेषु दातव्यं बुद्धिमत्तरैः॥२५॥

टीका–मिश्री और आदेके रसयुक्त पित्त कास हरता है. ऐसे और रोगोंमेंभी बुद्धिमान् वैद्य देवे ॥ २५॥

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यां रत्नानुपानकथने षष्ठी वीचिः ॥ ६ ॥

इति श्रीरमणविहारीविरचितायां अनुपानतरंगिणी-टीका०नौ० रत्नविधिकथने षष्ठः कोठकः ॥ ६ ॥

अथौषधानुपानानि ।

तत्र त्रिफलाविधिः ॥ आमलकाभयाक्षाः स्युरंघ्रिभूपक्षभागिकाः॥त्रिफलैषा समाख्याता समभागैस्तु वा त्रिभिः॥१॥भक्षिता निशि नेत्रार्तिं निहन्यान्मधुसर्पिषा ॥ शर्करासंयुता मेहं पित्तरोगं घृतान्विता२

टीका–अथ औषध अनुपान–तहां त्रिफलाविधि आमला ४ चार भाग, हरड़ १ एक भाग, बहेड़ा २ दो भाग, इसको त्रिफला कहते हैं. अथवा तीनों समभाग लेना. वही त्रिफला रात्रिमें घृतमधुयुक्त लेनेसे नेत्ररोग शांत होते हैं. शर्करयुक्त प्रमेहको और घृतयुक्त पित्तको जीतता है ॥ १ ॥ २ ॥

वातं तैलान्विता हंति कफं माक्षिकसंयुता ॥ तद्रसः क्षौद्रसंयुक्तः कामलां जयति ध्रुवम् ॥ ३ ॥

टीका–वातरोगको तैलयुक्त, कफको मधुयुक्त, त्रिफलाका रस मधुयुक्त कामलाको हरता है ॥ ३ ॥

वैडंगेन कषायेण खादिरेण विभावयेत् ॥ पृथक् पृथग्विशालाक्षि भृंगराजांबुना त्रिधा ॥ ४ ॥ विशोष्यमासकं सेवेद्वलीपलितनाशनम् ॥ सौंदर्यप्राप्तयेऽर्धाब्दमब्दं खादन् युवा भवेत् ॥ ५ ॥

टीका–त्रिफलाचूर्णको वायविडंगके काढ़ेमें और खैरके काढ़ेमें और भांगरेके रसमें न्यारी २ तीन २ भावना दे. फिर सुखाके एक महीना बलानुमान सेवे तो वलीपलित रोग नाश हो, सुंदरता प्राप्तिके वास्ते छे महीना. एकवर्ष सेवन करे तो वृद्ध भी ज्वान हो ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ गुडूच्यनुपानम् ॥ छिन्नाचूर्णं तु वा सत्वमनुपानेर्गदं जयेत् ॥ चूर्णं टंकात्तिंदु-कान्तं सत्वं वल्लाच्च मापकम् ॥ ६ ॥

टीका—अथ गिलोय अनुपान—गिलोयका सत्व अथवा चूर्ण अनुपानयुक्त लेनेसे रोग हरता है. चूर्ण एकटंकसे तोले भरतक और सत्व तीन रत्तीसे एक मासापर्यंत बलाबल देखके लेना ॥ ६ ॥

संजयेत्सितया पित्तं माक्षिकेण कफाम-यम् ॥ घृतेन वातजान् रोगान् विबंधं तु गुडेन वै ॥ ७ ॥

टीका—शकरयुक्त पित्तरोग और मधुयुक्त कफरोग, घृतयुक्त वातरोग, गुडयुक्त विबंधको हरता है॥७॥

रुबुतैलेन वातास्रं शुंठ्याचैवामवात-कम् ॥ गुल्मं चैवोदरं रोगं जयेच्छुं-ठ्येव सत्वरम् ॥ ८ ॥

टीका—एरंडतेलयुक्त वातरक्त, सोंठयुक्त आम-वात और गुल्म और उदररोग हरता है ॥ ८ ॥

तक्रेण मर्मजं रोगं माहिष्याज्येन नेत्ररुक् ॥ शमं यांति तथा सर्वे गदाः शीतांबुना प्रिये ॥ ९ ॥

टीका–छाँछयुक्त मर्मस्थानके रोग, भैंसके घृतमें नेत्ररोग और शीतल जलयुक्त सेवन करनेसे सर्व रोग जाते हैं ॥ ९ ॥

अथ सामान्यतः सर्वेषामनुपानानि ॥ अनुपानमहं वक्ष्ये सर्वसाधारणं रुजाम्॥ शांत्यै धातूपधातूनामौषधीनां विचक्षणे १०

टीका–अथ सामान्यसे सर्व रोगोंमें सर्वौषध अनुपान–हे प्रिये, मैं सर्व रोगोंकी शांतिके वास्ते सर्व धातु, उपधातु और औषधियोंका साधारण अनुपान कहता हूँ १० ॥

माक्षिकेण लिहेत्कृष्णां ज्वरे च विषमज्वरे ॥ त्रिदोषे शृंगवेरस्य रसं माक्षिकसंयुतम् ॥ ११ ॥

टीका–ज्वरमें और विषमज्वरमें मधुपिप्पली, त्रिदोषमें आदेका रस और मधु ॥ ११ ॥

कटुत्रिकरजोयुक्तं सिंहास्यस्वरसं लिहेत् ॥ कासश्लेष्मविकारस्य शांतिः स्यान्नवयौवने ॥ १२ ॥

टीका–हे तरुणी, त्रिकटुचूर्णयुक्त अरूसेका रस लेवे तो कास, कफरोग शांत हो ॥ १२ ॥

ज्वरे च पुनरायाते रेणुमेघकिरात-

कम् ॥ जीर्णज्वरहरा श्यामा मधुना मधुराधरे ॥ १३ ॥

टीका–हे मधुर अधरवाली, जो ज्वर गए पीछे फिर आवे तो पित्तपापड़ा, नागरमोथा और चिरायता देवे और जीर्णज्वरको हरनेवाली मधुयुक्त पीपल है ।१३।

तक्रं संग्रहणीरोगे कृमिरोगे विडंगकम् ॥ वह्निभल्लातकौ तद्वत्प्रियेऽर्शस्सु प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥

टीका–संग्रहणीमें मट्ठा, कृमिरोगमें वायविडंग, अर्शरोगमें चित्रक और भिलावा देना ॥ १४ ॥

पांडुरोगे च मंडूरं क्षये चैव शिलाजतु ॥ भार्ङ्गीविश्वौषधे श्वासे शूले हिंगुघृतान्वितम् ॥ १५ ॥

टीका–पांडुरोगमें मंडूर, क्षयमें शिलाजीत, श्वासमें भारंगी और सोंठ, शूलमें घृतयुक्त हींग ॥१५।

सितायुक्ता वरा मेहे वा निशा वा सितामलम् ॥ तृष्णायामग्निसंतप्तहेमतापितजीवनम् ॥ १६ ॥

टीका–प्रमेह त्रिफला मिश्रीयुक्त अथवा हलदं अथवा मिश्रीयुक्त आमला तृषामें तप्तसोनेका बुझा या पानी ॥ १६ ॥

लोहनिर्वापितं नीरं ज्वरे तृष्णा समन्विते ॥ करंजो रुबुतैलाढ्यं गोमूत्रं चामवातके ॥ १७ ॥

टीका—तृषायुक्त ज्वरमें तप्तलोहका बुझाया पानी, आमवातमें करंज और एरंडतैलयुक्त गोमूत्र ॥१७॥

वरा कृष्णारजः प्लीह्नि विषे हेमशिरीषकम् ॥ प्रदेयं भिषजा नित्यं कासे क्षुद्राकटुत्रिकम् ॥ १८ ॥

टीका—प्लीहामें त्रिफला पीपरका चूर्ण, विष खाएको सोना और शिरीषका रस, कासमें भूरींगणी और त्रिकटुचूर्ण देना ॥ १८ ॥

वायुरोगेऽनुपानं स्याद्यवनेष्टाज्यकौशिकम् ॥ आकल्लकवचाक्षौद्रैरपस्मारं जयेत्प्रिये ॥ १९ ॥

टीका—वातरोगमें लहशुन, घी, गुग्गुल, अपस्मारमें अकरकरा, वच मधुयुक्त देना ॥ १९ ॥

प्रदेयं प्रदरे रोध्रं रेचनं चोदरामये ॥ वातरक्ते स्मृताच्छिन्नैरंडतैलसमन्विता ॥ २० ॥

टीका—प्रदरमें लोध्र, उदररोगमें रेचन, वातरक्तमें एरंडतैलयुक्त गिलोय देना ॥ २० ॥

आर्दिते माषवटका नवनीतसमन्विताः । मधुनीरे समे मेदो गदे शस्ते न संशयः२१

टीका–अर्दितरोगमें उड़दके बड़े और माखन, मेदरोगमें मधु जल समभाग ॥ २१ ॥

अरुचौ बीजपूरं वा दाडिमं वा प्रदीयताम् ॥ कौशिकाग्र्या व्रणे शोके सुराद्राक्षाम्लपित्तके ॥ २२ ॥

टीका–अरुचिमें बिजौरा वा दाड़िम व्रणमें त्रिफला, गुग्गुल, शोकमें मदिरा, अम्लपित्तमें द्राक्षा॥२२॥

शतावरी च कूष्मांडस्वरसो मूत्रकृच्छ्रके ॥ सितोपलावराचूर्णं नेत्रातंके सुपूजितम् ॥ २३ ॥

टीका–शतावर और भूराकुम्हड़ाका रस मूत्रकृच्छ्रमें, नेत्ररोगमें मिश्रीयुक्त त्रिफलाचूर्ण ॥ २३ ॥

अनिद्रे माहिषं दुग्धमुन्मादे जीर्णकं घृतम् ॥ कुष्ठे च खदिरक्वाथो लाजाश्छर्दिगदे हिताः ॥ २४ ॥

टीका–निद्रा न आती हो तो भैंसका दूध, उन्मादमें जीर्ण घृत, कुष्ठमें खैरका क्वाथ, उलटीमें धानकी लाई ॥ २४ ॥

वालेऽजीर्णगदे निद्रा वा शिवाऽभोजनं जलम् ॥ पेयं तीक्ष्णतरं नस्यं गदे जत्रूर्ध्वसंभवे ॥ २५ ॥

टीका–अजीर्णमें निद्रा वा हरड़ वा लंघन वा जल. जत्रु कहते हैं गलेके आगे जो हड्डी है उसको जो गलेसे नीचे दोनों तरफ है उसके ऊपरके रोगोंमें तीक्ष्ण औषधका नास सूंघना ॥ २५ ॥

मूर्च्छासु शीतलोपायं पार्श्वशूले तु पौष्करम् ॥ कार्श्ये मांसरसो दुग्धं वा त्वश्मर्यां शिलाजतु ॥ २६ ॥

टीका–मूर्च्छामें शीतल उपाय, पसुलीकी शूलमें पुष्करमूल, दुर्बलताको मांसका जूस अथवा दूध, पथरीमें शिलाजीत ॥ २६ ॥

रसो मूलकपत्राणां सुयंक्षारसमन्वितः ॥ मूत्ररोधे तु हिक्कायां सितया सह मागधी ॥ २७ ॥

टीका–मूत्ररोधमें मूलीके पत्तेका रस और सोरा खार, हिचकीमें मिश्री और पीपल देना ॥ २७ ॥

शीते सर्पलतापत्रस्वरसो मरिचान्वितः ॥ घृततीक्ष्णान्वितो वाते तर्सास्वरसः प्रिये ॥ २८ ॥

टीका—हे प्रिये, शीतमें नागवेलीके पानका रस और मिर्च वातमें घृत और मिर्च युक्त तुलसीका रस देना.

कविप्रिया ॥ सत्कुलोद्भव प्रभो स्वकीयकं कुलादिकम् । ब्रूहि येन ते पितामहादिकान् जनाः किल ॥ संविदेयुरंबुजाक्ष काव्यकृन्नरोत्तम । पृच्छतीं तव प्रियामयि प्रजेश सत्वरम् ॥२९॥

टीका—अथ काव्यकर्ताकी कुलपरंपरा वर्णन करते हैं—तहां कविप्रिया पूँछती है कि, हे महाराज! आप अपनी परंपरा वर्णन करो, जिससे आपके पितामहादिकोंको लोग जाने. हे कमलनेत्र! हे काव्य करनेवाले, हे नरश्रेष्ठ, हे प्रजाके स्वामी, पूछनेवाली तुम्हारी प्रियाको जलदी कहो ॥ २९ ॥

कविः ॥ अभूद्भागीरथीतीरे कान्यकुब्जद्विजोत्तमः ॥बालाशर्मा हि सुकुलः पौंडरीकादियज्ञकृत् ॥ ३० ॥

टीका—अथ कवि स्वयं प्रियासे कहता है. हे वरारोहे, भागीरथी गंगाजीके किनारे ज्ञातीय कान्यकुब्ज ब्राह्मणोत्तम बालाशर्मा सुकुल होते भए. "सुकुलका अर्थ—[सुष्टुकुलो यस्य सः सुकुलः] सुंदर है कुल

जिसका सो सुकुल" ऐसे वाला शर्मा और पौंडरीकादि यज्ञके करनेवाले भये ॥ ३० ॥

वीरेश्वरोऽभवत्तस्य काशिनाथश्च तत्सुतः ॥ तदन्वयेऽभवद्वैद्यो धन्वंतरिरिवापरः ॥३१॥ गोवर्धन इति ख्यातः सदैवारोग्यवर्धनः ॥ तापीरामः सुतस्तस्य वैद्यशास्त्रविशारदः ॥ ३२ ॥

टीका–उनके पुत्र वीरेश्वर हुए. उनके काशिनाथ हुए. उनके वंशमें गोवर्धनसुकुल वैद्य हुए, सो जैसे दूसरे धन्वंतरि हुए. सो सदा आरोग्यके बढानेवाले उनके तापीराम सुकुल वैद्यशास्त्रमें चतुर भए ।३१।३२।

सीतारामोऽभवत्तस्य सर्वशास्त्रविदांवरः ॥ तत्सुतोऽहं वरारोहे लक्ष्मीर्मातास्ति मद्धिता ॥ ३३ ॥

टीका–उनके सीताराम सुकुल सर्वशास्त्रमें प्रवीण हुए. उनका मैं पुत्र हूं मेरी माता लक्ष्मी है; सो मेरा हितकरनेवाली है ॥ ३३ ॥

रघुनाथप्रसादोऽहं सत्कवींद्रसुखप्रदाम् ॥ अकरवं तव प्रीत्या अनुपानतरंगिणीम् ॥ ३४ ॥

टीका–मेरा नाम रघुनाथप्रसाद है. मैंने तुम्हारी

प्रीतिके वास्ते सत्कवियोंके सुख देनेवाली अनुपानतरंगिणी करता भया ॥ २४ ॥

अनुपानजलैः पूर्णा स्वच्छनीरैर्यथा नदी ॥ सुसमाप्तेयमञ्जाक्षि श्रीपतेः सुप्रसादतः ॥ २५ ॥

टीका—यह अनुपानरूप जलसे भरीहुई तरंगिणी नाम ग्रंथरूपी नदी है जैसे स्वच्छ जलसे भरीहुई नदी यह तरंगिणी लक्ष्मीनायकी कृपासे समाप्त हुई ॥२५॥

यत्फलं तरंगिणीकृतेऽस्ति सत्कुलांगने तत्फलं रमेशपादपद्मयोः समर्पितम् ॥ तेन वै जगद्धितंकरी भवेदियं सदा सत्सुपूजिता भिषग्वरेषु तिष्ठताद्भुवि ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्पंडितरघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यां सप्तमी वीचिः ७

टीका—जो फल इस तरंगिणीके रचनेसे हुआ सो मैंने लक्ष्मीपति नारायणके चरणकमलमें अर्पण किया; इसकरके यह अनुपानतरंगिणी जगतके हित करनेवाली हो और सदा श्रेष्ठ जनोंमें सराही जावे और श्रेष्ठ वैद्योंमें बहुत काल पृथ्वीमें स्थित रहै॥२६॥

इति श्रीवैद्यरसिकविहारीकृतायामनुपानतरंगिणी टीकायां नौकाख्यायां सप्तमः कोष्ठकः ॥ ७ ॥